बुद्धदेव

शक्रवायुवरुणादयः सुराः
विक्रिया मुनिवरांश्च यत्कृते ।
यांति तत्स्मर सुखं तृणायितं
यस्य कस्य न स विस्मयास्पदम् ॥

लेखक

जगन्मोहन वर्म्मा

१९२३.

दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा
भारतजीवन प्रेस, काशी में मुद्रित ।

दूसरा संस्करण] [मूल्य ?)

भूमिका

महात्मा बुद्धदेव संसार के बड़े महापुरुषों में एक आदर्श महापुरुष थे। हिंदुओं के ग्रंथों में जिस प्रकार राम, कृष्ण आदि परमात्मा के अवतार कहे गए हैं, उसी प्रकार बुद्ध भी कहे गए हैं। इनके अनुयायी आज तक हिंदुस्तान, तिब्बत, चीन, बर्म्मा, जापान, स्याम, लंका, जावा आदि देशों में पाए जाते हैं। बौद्ध धर्म हिंदूधर्म से कोई पृथक् धर्म नहीं है। जिस प्रकार एक सत्यसनातन वैदिक धर्म की श्रौत, स्मार्त, शैव, वैष्णव, आर्य्य-समाज आदि अनेक साम्प्रदायिक शाखाएँ हैं, जिनमें देश-काल के भेद से अंतर दिखाई पड़ता है, वैसे ही बौद्धधर्म भी सत्यसनातनधर्म की एक शाखा मात्र है। स्वयं भगवान् बुद्धदेव ने अपने वचनों में बीसों जगह कहा है—"एस धम्मो सनन्तनो।"

आजकल कुछ लोग महात्मा बुद्धदेव के उपदिष्ट सिद्धांतों को न जानकर यह कहा करते हैं कि महात्मा बुद्धदेव नास्तिक और वेदधर्म के विरोधी थे। सन् १९११ में गुरुकुल काँगड़ी के सरस्वती सम्मेलन में "क्या बुद्धदेव नास्तिक थे ?" इस विषय मर अपने विचार प्रकट करते हुए मैंने उन्हीं के वाक्यों से सिद्ध करके दिखाया था कि महात्मा बुद्धदेव नास्तिक नहीं थे। आज उन्हीं महात्मा का यह एक छोटा सा जीवनवृत्तांत आप के सामने उपस्थित करता हूँ।

इसके देखने से आप को मालूम होगा कि महात्मा बुद्धदेव एक महाविद्वान्, दार्शनिक और धर्मपरायण महापुरुष थे। उन्होंने ऋषियों के इस कथन का "यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि" का पूर्ण रूप से पालन किया था। वे संसार को कार्य्यकारण के अविच्छिन्न नियम में बद्ध और अनादि मानते थे और छः इंद्रियों को जिन्हें षड़ायतन कहा है, तथा अष्टांग मार्ग को ज्ञान का साधन समझते थे। अष्टांग मार्ग ये हैं—

१ सम्यक् दृष्टि=अच्छे प्रकार मनोयोग से परीक्षक बन कर देखना।

२ सम्यक् संकल्प=सोच विचार कर किसी काम का संकल्प करना जिससे संकल्प का विकल्प न हो।

३ सम्यग् वाचा=सोच विचार कर बात कहना, सत्य बोलना जिससे वचन मिथ्या वा निरर्थक न हो।

४ सम्यक् कर्म्म=सोच विचार कर नियमानुसार काम करना जिससे कोई कर्म निरर्थक न हो और अवश्य परिणाम तक पहुँचे और सफल हो।

५ सम्यगाजीव=सद्व्यवहार से जीविका निर्वाह करना।

६ सम्यग् व्यायाम=शारीरिक और मानसिक व्यायाम को ठीक ठीक, निरंतर करते रहना जिससे आलस्य न आवे, मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ उन्नति करती जायँ और नीरोग रहें।

७ सम्यक् स्मृति=स्मृति ठीक रखना अर्थात् बातों को न भूलना।

८ सम्यक् समाधि=सुख दुःख के प्रभावों से प्रभावित न होना

और समवृत्ति में स्थिर रहकर एकाग्रचित्त रहना।

उपर्युक्त अष्टांगिक मार्ग ऐसे साधन हैं जिनसे मनुष्य एक आदर्श पुरुष हो सकता है। इनके बिना मनुष्य सुन तो सकता है, पर मनन और निदिध्यासन नहीं कर सकता।

महात्मा बुद्धदेव का दार्शनिक सिद्धांत ब्रह्मवाद वा सर्वात्मवाद था। उन्होंने एक स्थल पर स्वयं कहा है—

ब्रह्मभूतो अतितुलो मारसेनप्पमद्दनो।
सब्बा मित्ते वसीकत्वा मोदामि अकुतोभयो॥

मैं अतितुल्य ब्रह्मभूत हूँ, मैंने मार की सेनाएँ तृष्णा आदि नष्ट कर डाली हैं, मैंने मैत्री से सबको अपने वश में कर लिया है, मैं ब्रह्मानंद में निमग्न हूँ, मुझे किसी का कुछ भी भय नहीं है।

इस ग्रंथ के लिखने के लिये निम्नलिखित ग्रंथों से मैंने सामग्री संग्रह की है—

ललितविस्तर।
अश्वघोषकृत बुद्धचरित।
धम्मपद।
दीर्घनिकाय।
मध्यमनिकाय।
अंगुत्तरनिकाय
खुद्दकनिकाय।
सुत्तनिपात।

महावग्ग ।

त्रिपिटक ।

बुद्धघोषकृत अट्ठकथा ।

म० म० डा० सतीशचंद्र विद्याभूषण कृत बँगला बुद्धदेव ।

जिनतत्त्वप्पकसिनी (बर्म्मी भाषा) ।

विलियम कृत बुद्ध ।

डेविस कृत बुद्धिज्म् ।

इनके अतिरिक्त उर्दू और अँग्रेजी में लिखे हुए बुद्धदेव के अनेक जीवनचरित्रों का मुझे पर्य्यालोचन और अवगाहन करना पड़ा है। इस ग्रंथ के लिखने में मुझे बर्म्मा देशवासी श्रीचंद्रमणि भिक्खु से विशेष सहायता मिली है जिन्होंने इस वर्ष के चातुर्मास्य में मेरे पास रहकर मुझे बर्म्मी भाषा के अनेक ग्रंथों से सामग्री संग्रह करने में सहायता दी। इस ग्रंथ में मैंने महात्मा बुद्धदेव के बुद्धत्व प्राप्त होने पर उनके उपदेशों और प्रतिवत्सर के भ्रमण-वृत्तांतों को जहाँ तक उनका पता त्रिपिटक आदि से चलता है, दिया है। यह काम उक्त भिक्षुजी की कृपा का फल है। उनके इस अनुग्रह और श्रम के लिये मैं उनको अंतःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

अंतिम प्रकरण में बुद्धधर्म के सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराया गया है। यह उनके उन उपदेशों का निचोड़ है जो मैंने कई वर्षों तक लगातार बौद्ध साहित्य के अवगाहन से निकाला है। इसमें मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा है, मैं बराबर त्रिपिटक से गाथाओं को प्रमाण में उद्धृत करता गया हूँ। इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान

कालिक बौद्धों के आचार व्यवहार आदि उन सिद्धांतों के अनुकूल नहीं, पर इसके लिये वे उत्तरदाता हैं, शास्त्र नहीं।

संभव है कि इस ग्रंथ में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, पर मैंने इस ग्रंथ को निष्पक्ष भाव से लिखने में अपनी ओर से जान बूझकर कोई कसर नहीं रक्खी है। आशा है कि पाठक त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

'सर्वे सर्वं न जानंति।'

काशी, गोरखनाथ का टीला।
२० नवंबर, सन् १९१४.

जगन्मोहन वर्म्मा।

विषय-सूची

वाराणसी में धम्मचक्क-प्रवर्तन

S. L. N. PRESS, 1131-23.

बुद्धदेव

(१) प्रस्तावना

शक्रवायुवरुणादयः सुराः
विक्रियां मुनिवरांश्च यत्कृते ।
यांति तत्स्मरसुखं तृणायते
यस्य कस्य न स विस्मयास्पदम् ॥

वैदिक आर्य्यों की प्राचीन सभ्यता, जिसे ऋषियों ने वैदिक काल के प्रारंभ में स्थापित किया था और जिसका मूलमंत्र "दृतेदृ ँ हमा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षंताम् । मित्रस्याहं सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" था, अनार्य जाति के सम्पर्क से, दूषित हो गई थी । उनकी वह स्वतंत्रता, जिससे प्रेरित होकर महर्षि विश्वामित्र ने समस्त कुशिक जाति को अपने अपने घरों में आग जलाने की * आज्ञा दी थी, प्राचीन अग्नि-

---

* देखो ऋग्वेद मं० ३ सू० २९ मं० १५
अमित्रायुधो मरुतामिवप्रयाः
प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्मकुशिकास एरिरे
एक एको दमे अग्निं समीधिरे ।

देवता की पूजा के अतिरिक्त जिसका प्रचार * पूर्व युगों से कश्यपीय सागर से गंगा यमुना के किनारे तक था, जिसने सविता आदि नए देवताओं की उपासना का प्रचार किया था, तथा पूर्वकाल से प्रचलित † नरमेध यज्ञ की प्रथा को एकदम उठा दिया था, कुछ

---

* ऋ० मं० १, सू० १, मं १।

अग्निः पूर्वेभि ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

प्राचीन काल से आर्य्यगण अग्निदेवता की ही पूजा करते थे। विश्वामित्रजी ने सविता आदि अनेक नए देवतों का पता चलाया और उनकी उपासना का प्रचार किया, गायत्री मंत्र की रचना की। तब से भारतीय आर्य्यों और पारसी (ईरानीय) आर्य्यों में भेद पड़ गया। पारसीय आर्य्यों का मुख्य देवता अग्नि बना रहा, पर भारतीय आर्य्यों ने सविता देवता की प्रधानता से उपासना करनी प्रारंभ की। इंद्र को जो सविता ही का रूपांतर था, समस्त देवताओं का अधिपति बनाया। ऐसा करने में विश्वामित्र जी का पश्चिमीय आर्य्यों ने, जिनके प्रधान याजक वशिष्ठ थे, विरोध किया। पर विश्वामित्र जी की प्रतिभा की ख्याति कश्यप सागर तक फैल गई और सिंधु पार के सुदास पैजवन ने उन्हें अपने यहां यज्ञ कराने के लिये बुलाया। वशिष्ठजी ने पहले तो सुदास को समझाने की चेष्टा की और उसकी बड़ी बड़ी खुशामदें कीं; पर उसने एक न माना, तब विश्वामित्र जी का विरोध करने पर वे उतारू हो गए। उन लोगों ने विश्वामित्र जी को पकड़ा, बांधा, लूटा और बहुत तंग किया। यह सब कथा ऋग्वेद मं० ३ और ७ से निकलती है। इसी आधार पर पुराणों में विश्वामित्र और वशिष्ठ के झगड़े की गाथा गढ़ी गई है।

† आर्य्यों में बहुत पूर्वकाल से नरमेध की प्रथा थी। ऐतरेय और कौषीतक ब्राह्मणों के देखने से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र के समय में हरिश्चंद्रवैधस् नामक एक राजा था। उसके कोई पुत्र न था।

धीमी पड़ गई थी। ऋषियों का वह स्वातंत्र्य और पक्षपात-राहित्य जिसने सारस्वत प्रदेश के रहनेवाले ऋषियों को * "कवष ऐलूष" नामक एक दासीपुत्र को वैदिक भाषा में कविता करने पर

उसने वरुण से प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरे कोई पुत्र होगा तो मैं उससे यज्ञ करूंगा। दैवयोग से उसके एक पुत्र हुआ और उसका नाम रोहित पड़ा। रोहित के जन्म लेते ही वरुण ने बार बार यज्ञ करने के लिए तगादा करना प्रारंभ किया, पर हरिश्चंद्र उसे टालते गए। अंत को जब रोहित बड़ा हुआ तो वह भागकर जंगल में चला गया। वरुण के बार बार दौड़ दौड़ कर तगादा करने से तंग आकर राजा हरिश्चंद्र ने एक लड़के को मोल लेकर उससे यज्ञ करने का निश्चय किया। अजीगर्त नाम के ऋषि के तीन पुत्र थे, शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनःलांगूल। हरिश्चंद्र जी ने उनसे शुनःशेप को मोल लिया। वही शुनःशेप बलिदान के लिये यज्ञयूप में बांधे गए। उस समय अपने बचने के लिए जो जो प्रार्थनाएं शुनःशेप ने की थीं वे मंत्र रूप में अब तक ऋग्वेद के पहले मंडल में मिलती हैं। अंत को विश्वामित्र जी ने यज्ञयूप से इन्हें बचाकर अपना कृत्रिम पुत्र बनाया। यही इतिहास कुछ उलट-फेर के साथ चंद्रकुमार जातक में मिलता है।

* कौषीतक ब्राह्मण अ० १२ में लिखा है कि एक बार ऋषि लोग सरस्वती के किनारे किसी सत्र में भोजन कर रहे थे। कवष ऐलूष उनकी पंक्ति में भोजन करने के लिये जा बैठा। ऋषियों ने उसे देख कर कहा कि "कवष तू दासीपुत्र है, हम तेरे साथ न खायंगे।" कवष वहां से चला गया और थोड़े ही दिनों में उसने कितने मंत्रों की रचना कर डाली। ऋषियों को जब कवष की योग्यता का पता चला तो उन लोगों ने उसके पास जा अपने अपराध की क्षमा-प्रार्थना की और उसे महर्षि कहकर अपनी पंक्ति में ले लिया। कवष के रचे मंत्र अब तक ऋग्वेद में हैं।

ऋषि मान अपनी पंक्ति में लेने के लिये बाध्य किया था, तथा इतरा के पुत्र ऐतरेय महीदास को ऋषियों से ऋषिपद प्रदान कराया था, यद्यपि जाते न रहे थे पर मंद पड़ गए थे। स्त्रियों की वह स्वतंत्रता जो उन्हें वैदिक काल में प्राप्त थी और जिसके कारण वे कितने ही मंत्रों की कर्त्री हुईं, उनसे छीनी जा चुकी थी और यज्ञों में यजमान के साथ उन्हें सम्मिलित होने की आज्ञा मिलने पर भी उनसे केवल आज्यनिरीक्षण का ही काम लिया जाता था।

शुद्ध वैदिक अध्यात्मवाद कर्मकांड के काले बादलों में छिप गया था। तपोधन ऋषि लोगों की संतानों को दक्षिणा के लोभ ने इतना घेरा था कि उनका परम कर्तव्य यज्ञ कराना ही हो गया था। याज्ञिकों ने यज्ञों में बाधक होने के कारण वेदार्थ के परम साधक इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी आदि प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों का ध्वंस कर दिया था और नैरुक्तक पक्ष भी लगभग विलुप्त हो गया था। याज्ञिक लोग वेद मंत्रों को स्वरसहित तोते की तरह रटते थे और उनके वास्तविक ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक आदि अर्थों पर विचार नहीं करते थे। ऐसी ही अवस्था में कौत्स आदि संशयवादी ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन लोगों ने "अनर्थका हि मंत्राः" इत्यादि वाक्यों से वेदों के मंत्रों को अनर्थक ठहराया जिसका उल्लेख निरुक्त में अबतक मिलता है।

इस बढ़े हुए कर्मकांड के युग में उत्तरीय भारत की अयोध्या, काशी, इंद्रप्रस्थादि राजधानियाँ अश्वमेध आदि यज्ञों में अग्निकुंड की आग में पड़ते हुए चटचटाते हुए पशुओं के मांस वपा आदि

की दुर्गंधि से सहस्रों वार दूषित हुई । स्वर्ग की कामना ने सहस्रों वार स्वर्गलोलुप यजमानों को पृथ्वी को पशुओं के रक्त से क्यारी की तरह सींचने के लिये वाध्य किया। श्रीमानों ने बड़े बड़े पशु-हिंसावाले यज्ञ करने ही में अपनी इतिकर्तव्यता और अपने ऐश्वर्य्य की शोभा समझी थी। यज्ञमंडप लोलुप यजमानों का क्रीड़ागार बना था। लोभ और काम ने याजकों को यहाँ तक घेरा था कि पुष्कल धन देनेवाला उनके लिये सभी कुछ था। अन्य ग्रंथों की तो वात ही क्या है, स्वयं ऋग्वेद के दक्षिणासूक्त में दक्षिणा देनेवालों को * ऋषि, ब्रह्मा, समग आदि सभी कुछ कहा गया है और यजुर्वेद अध्याय २३ में उन हँसी और दिल्लगियों का नमूना मौजूद है जो याज्ञिक लोग यज्ञमंडप में यजमान की कुटुंबिनी स्त्रियों से करते थे और जिसका समर्थन शतपथ ब्राह्मण कांड १६ अध्याय २ से भी होता है।

अविद्या का इतना प्रसार था और पक्षपात ने इतना घेर लिया था कि शूद्र तो असंभाष्य ही थे, द्विजों में भी कुछ थोड़े इने गिने ब्राह्मण और क्षत्रियों के अतिरिक्त शेष लोग मूर्ख ही रहते थे। ब्रह्मबंधु, राजन्यबंधु शब्द जिनका अर्थ अशिक्षित ब्राह्मण और अशिक्षित क्षत्रिय है, ब्राह्मण ग्रंथों तक में मिलते हैं। कहाँ वेदों की यह शिक्षा कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र क्या अंत्यजों तक मनुष्य

---

* तमु ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥

मात्र से मीठी बातें करना * कहीं शूद्रों को असंभाष्य ठहराना और 'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा' से उन्हें शिक्षा से वंचित रखना !

विशुद्ध अध्यात्मवाद वा ब्रह्मवाद जिसके विषय में "एतमेव वदन्त्यग्निं मनुमेके प्रजापतिम्। इंद्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्" की शिक्षा वैदिक महर्षियों ने दी थी और जिस सिद्धांत के विषय में महर्षि यास्काचार्य्य ने "आत्मैवेषां रथो भवति आत्माश्व आत्मायुध आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य" कहा था, वह देवतावाद के परदे में छिप गया था। सब लोग पुरुषार्थहीन हो प्रत्यक्ष देवताओं से जो उसी सर्वात्मा ब्रह्म के अवांतर वा शक्ति भेद थे और जिनके विषय में निरुक्तकार ने स्पष्ट शब्दों में "एकस्यात्मनोऽन्ये देवा प्रत्यङ्गानि भवन्ति" कहा था, उपयोग लेने की जगह उन्हें अपरोक्ष और अलौकिक मान उन्हें आहुतियों से प्रसन्न कर उनसे परलोक में सहायता की अभिलाषा रखते थे। हिंसा का प्रचार इतना बढ़ा था कि बड़े यज्ञों से लेकर गृह्यकर्मों तक और श्राद्ध से लेकर आतिथ्य-सत्कार तक कोई कृत्य ऐसा न था जो हिंसा और मांस के बिना हो सके।

दर्शनों का सूत्रपात यद्यपि बहुत पूर्व काल में, वैदिक युग में ही, महर्षि कपिल जी ने किया था और तब से समय समय

---

* यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ यजु अ० २६।२

पर विद्वान् लोग उनपर अपने विचार प्रगट करते रहे; पर सर्व-साधरण का ध्यान उनके गूढ़ तत्वों की ओर नहीं गया था। उपनिषदों का समय आया और चला गया, पर किसी को भी कर्मकांड का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। कुछ इने गिने विद्वान् लोग अवश्य, यथासमय वैदिक काल से ही, विज्ञान वा अध्यात्मवाद की झलक दिखाते रहे। पर राजाओं का विशेष लक्ष्य यज्ञ ही रहा। हाँ, कहीं कहीं कोई कोई राजर्षि जनक आदि आध्यात्मविद्या के सच्चे प्रेमी और जिज्ञासु देख पड़ते थे।

प्राचीन इतिहास और साहित्य पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि याज्ञिक और अध्यात्मवाद, उभय पक्ष, इस आर्य्या-वर्त में कई कई बार बारी बारी से प्रबल हुए और फिर उनका ह्रास हुआ। सब ने बारी बारी संहिताओं का संकलन किया जो पीछे कालांतर में या तो विरोध से या किसी और कारण से लुप्त-प्राय हो गईं। इन सहस्रों वर्षों के परस्पर के झगड़े का परिणाम यह हुआ कि याज्ञिकों ने अध्यात्मवादियों के मत की उत्कृष्टता को स्वीकार कर लिया। दोनों पक्षों के कर्मक्षेत्र के बीच सीमा बन गई और कर्मकांडियों ने अपना लक्ष्य स्वर्ग और ज्ञानकांडियों ने अपना लक्ष्य मोक्ष रक्खा।

अध्यात्मवाद की एक बार फिर उन्नति हुई। सांख्य योगादि विषयों पर ग्रंथ रचे गए। कणाद ने वैशेषिक शास्त्र की रचना की और गोतम ने न्याय शास्त्र रचा। महाभारत के युद्ध के समय महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ने अवतार लिया। इन महानुभाव ने

वेदों की संहिताओं का फिर से विभाग किया और वेदांतदर्शन की रचना की। इसी समय में व्यास जी के शिष्य जैमिनि ने मीमांसा शास्त्र रचकर यह स्पष्ट कर दिया कि केवल विधि-वाक्य की ही शब्दप्रमाणता है। इसके थोड़े ही दिनों पीछे महामुनि शाकटायन ने निरुक्त शास्त्र की रचना की और संस्कृत भाषा के लिये व्याकरण रचा। पर थोड़े ही दिनों पीछे याज्ञिकों की फिर भी प्रबलता हो गई और आध्यात्मिक पक्ष दब गया। अब की बार याज्ञिकों का दल बहुत प्रबल हुआ। इस समय बड़े बड़े अश्वमेध गोमेधादि यज्ञ हुए जिनमें दिए हुए निष्क अब तक भारतवर्ष के खँडहरों में निकलते हैं। इन निष्कों पर घोड़े, बैल आदि के चिह्न अश्वमेध, गोमेध आदि यज्ञों के द्योतक बने हुए मिलते हैं। श्रौत्रसूत्रों का निर्माण प्रायः इसी काल में हुआ था। महर्षि पाणिनि जी ने अष्टाध्यायी रचकर याज्ञिकों के रूढ़ि अर्थ की बड़ी सहायता की और याज्ञिकों ने इनके व्याकरण को अपनाकर शाकटायनादि व्याकरणों के प्रचार में बाधा डाली।

इस नए युग में अध्यात्मवाद बिल्कुल दब गया था और दर्शनों का प्रचार अत्यंत कम हो गया था। हाँ योगशास्त्र का भले ही कुछ योगियों में प्रचार रह गया था जो अष्टांगयोग के अंतरंग प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की ओर न जाकर केवल बहिरंग यम, नियम, आसन और प्राणायाम ही का करना अपनी इतिकर्तव्यता समझते थे और योग का फल चित्त-

वृत्ति निरोध न समझ ऋद्धियों की प्राप्ति के लिये बड़े बड़े कष्ट सहते थे। उनमें सच्चे वैराग्य का जिसका लक्षण "दृष्टानुश्राविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्" था, नितांत अभाव था और उन लोगों ने "देहदुःखं महत्फलं" मानकर जंगलों में रहकर तप करने ही में अपनी इतिकर्तव्यता समझी थी।

पुरुषार्थ और स्वात्मावलंबन से लोगों का विश्वास हट गया था। चारों ओर आसुरी शक्ति का प्रभाव था और दैवी शक्ति बिलकुल विरोहित हो गई थी। ऐसे समय में कहीं याज्ञिक रूप में, कहीं योगियों के रूप में, कहीं क्षत्रियों के रूप में, चारों ओर आसुरी संपत्ति के लोगों ही की प्रधानता थी। दैवी संपत्ति के लोग या तो थे ही नहीं, औरयदि थे भी तो किसी कोने में पड़े अपना काल-क्षेप कर रहे थे। प्रकृति के लिये आवश्यक था और समय आ गया था कि यहाँ कोई महापुरुष अवतार ग्रहण करे और आसुरी माया का ध्वंस करके शुद्ध आर्य्य धर्म का अभ्युत्थान करे जिसकी प्रतिज्ञा भगवान् कृष्णचंद्र ने महाभारत के समय में अर्जुन से की थी—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(२) वंश-परंपरा

बहुत दिन हुए, कौशल की राजधानी अयोध्यापुरी में, जिसे साकेत भी कहते हैं, सूर्य्यवंश के विमल वंश में इक्ष्वाकु नामक बड़ा प्रतापी राजा हुआ था जिसके वंश में महाराज रामचंद्र जी ने अवतार लिया था। उसी इक्ष्वाकुवंश में महाराज सुसम्मति ने जन्म लिया जिनसे कई पीढ़ी पीछे महाराज मान्धाता * का जन्म हुआ। महाराज मान्धाता से सैकड़ों पीढ़ी पीछे उसी वंश में महाराज सुजात † हुए। महाराज सुजात की पटरानी से अवपुर आदि पाँच पुत्र और शुद्धा आदि पाँच कन्याएँ थीं। पर महाराज ने जयंती नामक किसी साधारण कन्या पर आसक्त होकर बुढ़ापे में उससे विवाह कर लिया। दैववश थोड़े ही दिनों बाद जयंती के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम जयंत रक्खा गया। कहते हैं कि एक दिन महाराज ने जयंती पर अत्यंत मुग्ध हो उससे प्रसन्न होकर यथेच्छ वर माँगने के लिये कहा। जयंती ने

---

* महावंश के अनुसार महासम्मत और मान्धाता के बीच में चार राजा हुए हैं, जिनके नाम रोज, वररोज, कल्याण और उपोषध थे, पर महावस्तु में कल्याण, रव और उपोषध तीन ही का नाम लिखा है।

† क्षेमेंद्र ने अवदानकल्पलता में इसे विरूढ़क लिखा है और इसे मान्धाता से सहस्रों वर्ष पीछे लिखा है। उसके मत से मान्धाता और विरूढ़क के बीच क्रकि, कश्यप और इक्ष्वाकु नामक बड़े प्रसिद्ध राजा हुए थे।

राजा को अनुकूल जान कहा कि "महाराज! मैं अपनी यह थाती आप के पास रखती हूँ। मैं अपने माता पिता की सम्मति लेकर आप से वरप्रदान के लिये प्रार्थना करूँगी।" थोड़े दिनों के बाद जयंती अपने माता पिता के घर गई। वहाँ अपने माता पिता और कुटुंबियों से वर का सब समाचार उसने कह सुनाया। उसके कुटुंबियों में किसी ने गाँव, किसी ने धन, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ माँगने के लिये कहा। इसी बीच में एक बुद्धिमती स्त्री बोल उठी—"हे जयंती! तुम जानती हो कि महाराज की क्षत्रिया पटरानी के पाँच पुत्र हैं; उनमें से किसी के होते तुम्हारे पुत्र जयंत को राज्य मिलना नितांत दुस्तर क्या, असंभव है; और यह भी असंभव है कि महाराज सदा तुम्हारे अनुकूल और वशीभूत हो रहें। इक्ष्वाकु वंशियों का यह सनातन से स्वभाव है कि उनकी वाणी कभी अन्यथा नहीं होती। अतः मेरी तो यही सम्मति है कि तुम महाराज से यह वर माँगो कि महराज! मेरी यही प्रार्थना है कि आप ऐसा प्रयत्न करें कि आप के बाद जयंत ही अयोध्यापुरी का राजा हों।" उसकी सम्मति को सभी लोगों ने पसंद किया और जयंती वहाँ से अयोध्यापुरी आई।

जयंती ने एक दिन राजा को अपने अनुकूल देख हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"महाराज, आज मैं आप से अपनी थाती माँगती हूँ। यह राजकुल सदा से सत्यभाषी विख्यात है, अतः यदि आपने मुझ पर प्रसन्न हो मुझे वरप्रदान करना स्वीकार किया है तो मेरे पुत्र जयंत को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए, जिससे वह आपके

परलोक प्राप्त होने पर आपका उत्तराधिकारी हो।" राजा ने "एवमस्तु" कह दूसरे दिन राजसभा में जयंत को बुला मंत्रियों से अपनी इस प्रतिज्ञा की घोषणा की और अपने पाँचों राजकुमारों को वनवास की आज्ञा दी। राजा की यह घोषणा सुन राजकुमारों ने अपनी पाँचों बहिनों को अपने साथ ले वन जाने की तैयारी की और तत्क्षण उन्होंने उत्तराभिमुख वन को प्रस्थान किया। वहाँ से चलकर वे लोग काशीकौशल देश में पहुँचे और वहाँ कुछ दिन तक रहे। पर काशीकौशल के राजा ने जब देखा कि उनके सुव्यवहार से प्रजा उन लोगों को बहुत प्यार करती है, तो उसे भय हुआ कि ऐसा न हो कि एक दिन सारी प्रजा इनके अनुकूल हो जाय और इन्हें मेरे स्थान पर राजसिंहासन पर बैठा दे। इसी लिये उसने ईर्ष्यावश अपने राज्य से उन्हें निकाल दिया। वहाँ से निकलकर उन लोगों ने हिमालय के शाकोट वन की राह ली और वे महर्षि कपिल जी के आश्रम में पहुँचे। महर्षि कपिल ने उन प्रवासित राजकुमरों का स्वागत किया और उन्हें अपने आश्रम में आश्रय प्रदान किया। महर्षि कपिल के आदेशानुसार उन लोगों ने उस घने जंगल को काटकर वहाँ एक नगर बसाया और उस नगर का नाम कपिलवस्तु रक्खा और वे वहाँ क्षत्रिय जाति के अभाव में क्षत्रिय कन्या को न पा अपनी बहिनों के साथ विवाह कर रहने लगे। थोड़ी ही शताब्दियों में उस सारे देश में उनके वंशधर फैल गए। कहते हैं, वहाँ ये लोग शाक्य नाम से प्रख्यात हुए। शाक्य नाम पड़ने का हेतु यह बतलाया जाता है कि जब ओध्यापुरी के राजा महाराज सुजात को

यह पता चला कि राजकुमार शाकोट बन में अपनी बहिनों से विवाह कर कपिल मुनि के आश्रम के पास कपिलवस्तु नामक नगर बसा कर रहते हैं, तो उन्होंने विद्वानों की मंडली एकट्ठी कर यह प्रश्न किया कि राजकुमारों का शास्त्र-विरुद्ध यह कृत्य शक्य है वा अशक्य? विद्वानों ने उनके इस कृत्य को आपद्धर्म बतलाकर शक्य होने की व्यवस्था दी। इसी लिये वे लोग शाक्य ❀ कहलाने लगे।

❀ अवदान-कल्पलता में लिखा है कि राजा अपने पुत्रों को फिर बुलाने के विषय में अपने मन में यह विचार करने लगे कि यह शक्य है वा अशक्य। इसीसे वे शाक्य कहलाए।

कितने लोगों का मत है कि शाक्य शक (Scythian) थे। उनका कथन है कि ईसा के जन्म से ८ शताब्दी पूर्व जो लोग मध्य एशिया से आकर नैपाल की तराई और मगध आदि देशों में बसे, उन्हीं के अंतर्गत शाक्यगण भी थे। शाक्य नाम पड़ने का एक और हेतु हो सकता है। शाक शब्द ही शाकोट वन की प्रकृति जान पड़ता है। इसी शाक से हिंदी भाषा का साखू शब्द निकला है। अनुमान होता है कि साखू के जंगल के कारण ही नैपाल की तराई को पुराणों में शाकद्वीप कहा हो और यहां रहने ही से क्षत्रिय लोग शाक्य तथा ब्राह्मण शाकद्वीपी कहलाने लगे हों। ऋग्वेद में मगध देश के पुराने वासियों को 'मगंद' लिखा है जिससे मगध शब्द बना है। अधिक संभव है कि येही लोग आर्यों में मिलने पर पीछे शाक्य, शाकद्वीपी आदि विभेदों के नाम से प्रख्यात हुए हों। शाकद्वीपी ब्राह्मणों को पुराणों में 'मग' भी कहा है। मगंदी, मग, मुग, माजी (Magi), मांग, मंगोल (Mangolian), शब्दों का साम्य भी चिंत्य है।

भागवत में भी शाक्यों को इक्ष्वाकुवंशी लिखा है—

भागवत दशमस्कंधे। परमेश्वरात् ब्रह्मा जातः तस्य पुत्रो मरीचिस्तस्य काश्यपस्तस्य सूर्य्यस्तस्य वैवस्वतोमनुः। सत्ययुगे मनुरेव राजासीत। त्रेतायुगे तस्यपुत्र इक्ष्वाकुः ..., ... तस्य अजः तस्य दशरथः। विष्णु रामचन्द्ररूपेण तस्यपुत्रत्वं प्राप्तवान्...असौ त्रेताद्वापरयोः संधौव अ-

इसी शाक्यवंश में बहुत दिनों पीछे * उल्कामुख नामक राजा हुआ जिसके अमृता नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। अमृता अत्यंत रूपवती थी, पर यौवनावस्था प्राप्त होने पर वह कुष्ट रोग से पीड़ित हुई। राजकुमारी के रोग-नाश के लिये अनेक प्रयत्न किए गए, पर रोग बढ़ता गया और समस्त शरीर में व्रण हो गए। राजकुमारों ने जब देखा कि उसे असाध्य रोग हो गया तो वे उसे गाड़ी पर चढ़ा हिमालय के एक उत्संग पर्वत की गुहा में ले गए और वहीं छोड़ आए। वहाँ रहने से थोड़े ही दिनों में राजकुमारी अमृता नीरोग हो गई और उसी गुहा में रहने लगी। उस गुहा के समीप राजर्षि कोलि † का आश्रम था। राजर्षि कोलि उस आश्रम में रहकर

तीर्थः ... ... तस्य प्रसेनजित् तस्य तक्षकः तस्य बृहद्बलः। असौ युधिष्ठिरस्य समकालीनः भारते युद्धे अभिमन्युना हतः। तस्य बृहद्रणः, तस्य उरुक्रियः, तस्य वत्सवृद्धः, तस्य प्रतिव्योमः, तस्य भानुः, तस्य देवाकः, तस्य सहदेवः, तस्य वीर, बृहदश्वः, तस्य भानुमान्, तस्य प्रतीकाश्वः, तस्य सुप्रतीकाश्वः, तस्य सुप्रतीकः, तस्य सहदेवः, तस्य सुनक्षत्रः, तस्य पुष्करः, तस्य अंतरिक्षः, तस्य सुतापः, तस्य अमित्रजित्, तस्य बृहद्रजः, तस्य बर्हिः, तस्य कृतंजयः, तस्य रणंजयः तस्य संजयः तस्य शाक्य, तस्य शुद्धोदः (शुद्धोदनः ?)

* महावंश में मान्धाता और उल्कामुख के बीच निम्नलिखित राजाओं के नाम मिलते है। वरमांधाता, चरक, उपचरक, चैत्य, मुचल, महामुचल, मुचलिंद, सगर, सागरदेव, भरत, भगीरथ, रुचि, सुरुचि, प्रताप, महाप्रताप, प्रणाद, महाप्रणाद, सुदर्शन, महासुदर्शन, नेरु, महानेरु, फिर ८४१०० राजा जिनका नाम नहीं दिया है, और उल्काद जिसे उल्कामुख का पिता लिखा है।

† किसी किसी का मत है कि राजर्षि कोलि पहले काशी के राजा थे। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। वे काशी त्यागकर हिमालय में रहते थे और

पंच प्रकार अभिज्ञा तथा चतुर्विधि ध्यान लाभ कर चुके थे। एक दिन की बात है कि उस गुहा के पास मनुष्य की गंध पाकर एक सिंह आया और अपने हाथों से उस पत्थर को जो गुहा के द्वार पर पर रक्खा था, हटाने लगा। राजर्षि कोलि ने जो वहाँ अपने आश्रम में फिर रहे थे, सिंह को देख उस पर बाण चलाया। बाण के लगने से सिंह मर गया। तब वे उसके पास गए और उन्होंने कुतूहलवश गुहा के द्वार के पत्थर को हटाया तो उसमें से एक सुंदर कन्या निकलकर बाहर आई। राजर्षि उसके रूप लावण्य को देख उस पर आसक्त हो गए और उससे उसके विषय में पूछ ताछ करने लगे। अमृता ने उनके पूछने पर अपना सारा समाचार कह सुनाया। जब कोलि जी को यह मालूम हुआ कि अमृता शाक्यवंश की राजकन्या है तो उन्होंने उससे गंधर्व विवाह कर लिया। कोलि ऋषि और अमृता से उस आश्रम में बत्तीस पुत्र उत्पन्न हुए। ऋषि ने उन सब का संस्कार किया और वे सब बड़े रूपवान्, जटा-मृगचर्मधारी, ब्रह्मचारी बन ऋषि-आश्रम में रहने लगे। अमृता ने एक दिन अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि "तुम लोग कपिलवस्तु जाओ। वहाँ तुम्हारे मामा रहते हैं।" लड़कों ने माता पिता की आज्ञा ले उन्हें प्रणाम कर कपिलवस्तु की राह ली और थोड़े दिनों में वे वहाँ जा पहुँचे। वहाँ शाक्यगण उन ब्रह्मचारियों को आकस्मिक नगर में घुसते देख

कोलि नामक ओषधि खाने से चंगे हो गए थे। उन्होंने अमृता को भी कुष्ट रोग से पीड़ित देख वही ओषधि खिलाई थी।

उनसे पूछने लगे कि "आप लोग कौन हैं और यहाँ कैसे आए हैं?" ब्रह्मचारियों ने उत्तर दिया कि हम शाक्य-राजकुमारी अमृता और राजर्षि कोलि के पुत्र हैं और अपने पिता माता के आज्ञानुसार यहाँ निवास करने के लिये आए हैं। उनके आने की सूचना लोगों ने कपिलवस्तु के महाराज को दी और राजा ने सहर्ष उन ब्रह्मचारियों का स्वागत किया। उन ब्रह्मचारियों का कपिलवस्तु में समावर्तन संस्कार किया गया और शाक्यवंशी कन्याओं से विवाह कर उन्हें राज्य में रहने को जगह दी गई। ये लोग रोहणी नदी की पूर्व दिशा में कोलि ग्राम बसाकर रहने लगे। इन लोगों के वंशधर कोलिय कहलाने लगे और इन लोगों का शाक्यों से परस्पर विवाह-संबंध होता रहा।

बहुत दिनों बाद देवदह के कोलि राजवंश में सुप्रभूत नामक राजा उत्पन्न हुआ। इसके सुप्रबुद्ध और दंडपाणि नामक दो पुत्र और माया, महाप्रजावती * आदि पाँच कन्याएँ थीं। उस समय कपिलवस्तु में शाक्यवंशी महाराज सिंहहनु † राज्य करते थे।

* इन्हीं दोनों को महामाया और महाप्रजावती भी कहते हैं।

† महावंश में उल्कामुख से सिंहहनु तक निम्नलिखित राजाओं के नाम मिलते है---निपुर, छंदोमुख, संजय, वेस्संता, जालि और सिंहवाहन। सिंहवाहन से ८२००० पीढ़ी बाद महाराज जयसेन हुए जिनको महावंश ने सिंहहनु का पिता लिखा है। अवदानकल्पलता का मत है कि विरुढ़क से २५००० पीढ़ी बाद दशरथ हुए जिनके वंश में सिंहहनु उत्पन्न हुए। महावस्तु में उल्कामुख और सिंहहनु के बीच केवल हस्तिशीर्ष का नाम आया है।

थीं। महाराज सिंहहनु के परलोक प्राप्त होने पर उनका बड़ा लड़का शुद्धोदन कपिलवस्तु के राज-सिंहासन पर बैठा। शुद्धोदन ने देवदह के महाराज सुप्रभूत की दो कन्याओं माया और प्रजावती का पाणिग्रहण किया तथा अपनी बहिनों अमृता और प्रमृता का विवाह देवदह के राजकुमार सुप्रवुद्ध और दण्डपाणि से कर दिया। इन्हीं शाक्याधिपति शुद्धोदन के घर महात्मा बुद्धदेव का जन्म हुआ।

(३) बुद्ध-जन्म

हसति सकललोकालोकसर्गाय भानुः
परममभृतवृष्टौ पूर्णतामेति चन्द्रः ।
इपति जगति पूज्यं जन्म गृह्णाति कश्चित्
विपुल कुशलसेतुर्लोकसन्तारणाय ॥

कपिलवस्तु का छोटा राज्य नैपाल की तराई में अचिरावति * और रोहणी † नाम की दो पहाड़ी नदियों के बीच में था। राज्य के उत्तर में हिमालय पर्वत का पदस्थ जंगल, पूर्व में रोहिणी नदी जो कोलियों के देवदह के राज्य को कपिलवस्तु से अलग करती थी, दक्षिण में काशीकौशल और पश्चिम में कौशल का विशाल राज्य पड़ता था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। राज्य का विस्तार उस समय में कितना था, इसका तो कुछ ठीक पता नहीं चलता; पर चीनी यात्री ह्युयन च्वांग के समय में कपिलवस्तु का विस्तार ४००० ली था। यह देश उस समय आबाद न था और प्रायः विशेष भाग साखू के घने जंगल से आच्छादित था। केवल कहीं कहीं छोटी छोटी बस्तियाँ थीं जिन्हें

---

* इस नदी को अब रापती कहते हैं। यह हिमालय पहाड़ की तराई से बहराइच के उत्तर निकलकर बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर में से बहती हुई घाघरा में मिलती है। यह अपना कूल वा धार सदा बदला करती है।

† यह नदी हिमालय की तराई से निकलकर नैपाल में होकर बस्ती जिले में से होती हुई गोरखपुर के पास रापती में गिरती है।

लोगों ने जंगल काटकर आबाद किया था। पृथ्वी उर्वरा और निम्न थी। जगह जगह पर पहाड़ी नदियों की धार बदलने से झील और ताल पड़ गए थे जिनमें कमल और कोईं खिली रहती थीं। देश की रहनेवाली थारू, लोध आदि जंगली जातियाँ थीं जिनको बहुत पीछे क्षत्रियों ने आकर निर्वासित किया। देश की प्रधान उपज धान, कोदो, गवेधुक्, सावाँ आदि थी। तालों में तीनी, तुम्बा आदि जंगली धान स्वच्छन्द उपजते थे जिन्हें खाकर वानप्रस्थ तपस्वीगण अपना जीवन निर्वाह करते हुए परमात्मा का भजन करते थे। जंगलों में नाना प्रकार के फल, फूल, कंद, मूल, शाक आदि प्रत्येक ऋतु में उपजते थे और शस्यपूर्ण वसुंधरा वहाँ रहनेवाले पशु पक्षियों के लिये पुष्कल सामग्री लिए हुए सदा उपस्थित रहती थी। प्रजाओं की सम्पत्ति अन्न और गो थी और सब लोग दूध-पूत से सुखी थे।

कपिलवस्तु की राजधानी उसी नाम से प्रख्यात थी जो कपिलमुनि के आश्रम के पास वाणगङ्गा * के दाहिने किनारे पर उससे उत्तर पश्चिम की ओर बसी हुई थी। नगर के चारों ओर गूढ़ प्राकार था जिसके किनारे पनियाँसोत खाई थी। नगर के मध्य राज-परिवार के पृथक् पृथक् महल बने हुए थे। चौड़ी

* यह नैपाल की तराई से आई है और बस्ती में ककरही के पास बूढ़ी रापती से मिली है। इसका उल्लेख हुयेनच्वांग ने किया है जिसे उसके अनुवादकों ने Arrow Stream लिखा है।

चौड़ी सड़कों के किनारे अच्छे अच्छे मकान और अच्छे अच्छे हाट बाजार थे। नगर के बीच में राजमहल था और नगर से बाहर जाने के लिये चार फाटक थे, जिन पर सदा रख-वाले रहा करते थे।

इसी नगर में ईसा के जन्म से ५५७ वर्ष पूर्व महाराज सिंह-हनु के ज्येष्ठ पुत्र महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे। ये अत्यंत चरित्रवान्, प्रजावत्सल, धर्मनिष्ठ और शांत प्रकृति के थे। यद्यपि इनकी माया और प्रजावती दो रानियाँ थीं, पर इनके कोई संतान न थी। आर्य्य ऋषियों का कथन है कि मनुष्य तीन ऋण लेकर संसार में जन्म लेता है—ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण। विद्याध्यन कर वह ऋषियों के ऋण से मुक्त होता है और यज्ञ कर वह देव ऋण से छुटकारा पाता है। पर पितृऋण उस पर तब तक बना रहता है जब तक कि वह संतान का मुहँ न देखे। इसी लिये यह जनश्रुति चल पड़ी है "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति स्वर्गे नैव च नैव च।" अर्थात् अपुत्र की स्वर्ग में कभी गति नहीं है। महाराज शुद्धोदन इसी चिंता से सदा व्याकुल रहते थे। समस्त धन-धान्य ऐश्वर्य्य सम्पन्न होने पर भी उन्हें पुत्र न होने से चारों ओर अँधेरा देख पड़ता था। महाराज शुद्धोदन की अवस्था चालीस के ऊपर हो चुकी थी और कोई संतान न हुई। इस दुःख से उनकी सारी प्रजा और समस्त शाक्यवंश दुःखी थे।

गावो हिरण्यं बहुशस्य मालिनी
वसुंधरा चित्रपदं निकेतनम्।

सम्भावना वन्धुजनश्च संगमो
न पुत्रहीनं वहवोप्यरंजयन् ॥

अनेक यज्ञादि करने पर महाराज शुद्धोदन की पैंतालिस वर्ष की अवस्था में वैशाख की पूर्णिमा के दिन उनकी पटरानी महामाया को गर्भ रहा*। प्रजावर्ग यह सुनकर कि महाराज की रानी गर्भवती हैं, वहुत प्रसन्न हुए और चारों ओर आनंद मनाया जाने लगा। राजमहल में इस आनंद के उपलक्ष में वड़ा उत्सव मनाया गया जिसमें शाक्यवंश के सभी राजकुमार निमंत्रित किए गए। वधाई वजी और सव ने महाराज शुद्धोदन के भाग्य की प्रशंसा की।

जव से महामाया गर्भवती हुई, उसका मुखड़ा चाँद सा चमकने लगा। महाराज शुद्धोदन का हृदयकमल जो वहुत दिनों से कुम्हलाया हुआ था, खिल गया। उनकी मुर्झाई हुई आशालता पनपने लगी। सव प्रजावर्ग पुत्र के उत्पन्न होने के समय की वड़े कुतूहल से प्रतीक्षा करने लगे। धीरे धीरे पुत्र के प्रसव का काल भी आ पहुँचा। महामाया की यह प्रवल इच्छा थी कि उनका पुत्र उनके पिता के घर उत्पन्न हो। इसलिये जव प्रसव का काल अत्यंत समीप आ गया तव उन्होंने महाप्रजावती से इस वात की सलाह कर महाराज शुद्धो-

---

* ललितविस्तर का मत है कि गर्भाधान के थोड़े समय वाद ही महामाया ने स्वप्न देखा कि एक महात्मा जिसका वर्ण हिम रजत के समान स्वच्छ था और जिसकी प्रभा चंद्र सूर्य्य के समान थी, उसके उदर में प्रवेश कर गया। इस स्वप्न का फल ब्राह्मणों ने यह वतलाया था कि महामाया के गर्भ से जो लड़का उत्पन्न होगा, वह चक्रवर्ती राजा वा बुद्ध होगा।

दन से अपने पिता के घर जाने की इच्छा प्रकट की। महाराज शुद्धोदन ने महामाया की इच्छा भंग करना अनुचित जान उनको महाप्रजावती के साथ देवदह जाने की आज्ञा दे दी। चटपट महामाया के देवदह जाने की तैयारी हुई और उसने प्रजावती के साथ देवदह के लिये प्रस्थान किया।

कपिलवस्तु और देवदह के बीच शाक्य राज्य की सीमा ही के भीतर महाराज शुद्धोदन ने एक उत्तम बाग बनवाया था। उसका नाम लुंबिनी * कानन था। वह उस समय एक उत्तम उद्यान था। बाग में एक छोटा सा प्रासाद बना था जहाँ महाराज शुद्धोदन ग्रीष्म ऋतु में कभी कभी विहार के लिये जाकर ठहरा करते थे। कपिलवस्तु से चलकर महारानी महामाया और महाप्रजावती वहीं जाकर ठहरीं। कहते हैं कि महाराज शुद्धोदन भी प्रेमवश उनके साथ लुंबिनी तक पधारे थे।

लुंबिनी पहुँचने पर † महामाया को प्रसववेदना हुई। इस कारण वे देवदह को न जा सकीं। माघ पूर्णिमा के दिन महामाया लुंबिनीकानन में फिर रहीं थीं कि अचानक उनके प्रसव का समय-

---

* यह स्थान नेपाल राज्य में भगवानपुर के पास है और अब इसे रोमिन देवी कहते हैं। यहां एक टूटा हुआ अशोक का स्तंभ भी है।

† कई ग्रंथों का मत है कि महामाया ने लुंबिनी कानन में रात को चार स्वप्न देखे - पहले उसने देखा कि छः दांतोंवला एक सुंदर सफेद हाथी उसके उदर में प्रवेश कर गया। फिर उसने देखा कि मैं आकाश में उड़ रही हूं। तीसरी बार उसने अपने को एक ऊंचे पहाड़ से उतरते देखा और अंत को उसने देखा कि सहस्रों मनुष्य उसके आगे साष्टांग दंडवत कर रहे हैं।

आ गया। इस समय उनकी वहिन और छोटी पटरानी महाप्रजावती तथा अन्य कई दासियाँ उनके साथ थीं। महामाया प्रसववेदना से असमर्थ हो एक शाल * वृक्ष के नीचे उसकी डाली पकड़कर खड़ी हो गईं और इसी समय भगवान् बुद्धदेव का जन्म हुआ।

महाराज शुद्धोदन ने पुत्रजन्म का समाचार सुनकर बड़ा उत्सव मनाया। अनेक प्रकार के दान ब्राह्मणों को दिए। उनके सब मनोरथ पूर्ण हो गए और हर्ष में आकर उन्होंने अपने मुँह से राजकुमार का नाम सिद्धार्थ रक्खा। महात्मा बुद्धदेव के जन्म के दिन श्रावस्ती, राजगृह, कौशांबी और उज्जयिनी देशों के राजाओं के घर भी प्रसेनादित्य, बिंबसार, उदयन और प्रद्योतकुमार के जन्म हुए। चारों ओर भारतवर्ष में आनंद की दुंदुभी बजने लगी। चारों दिशाएँ जय जय शब्द से गूँज उठीं। पाँचवें दिन कुल-पुरोहित विश्वामित्र ने कुमार को सुगंधित जल से स्नान करा के उसका नामकरण संस्कार किया और उसका नाम गौतम रक्खा गया। कहते हैं कि मायादेवी पुत्र-जन्म के सातवें दिन प्रसूतिकागृह ही में अपने प्रिय-पुत्र को महाप्रजावती की गोद में दे परलोक सिधारीं। महाराज शुद्धोदन ने महामाया के परलोकवास होने पर सिद्धार्थ कुमार के लालन-पालन के लिये आठ अंगधात्री, आठ क्षीरधात्री, आठ मलधात्री और आठ क्रीड़ाधारी नियुक्त कीं और वे महाप्रजावती को बालक सहित कपिलवस्तु में ले आए।

---

* किसी किसी ग्रंथ में अशोक वृक्ष के नीचे लिखा है।

कपिलवस्तु में आने पर बहुत कुछ उत्सव मनाया गया। बड़े बड़े ज्योतिषी आए और राजकुमार की जन्मकुंडली बनाकर उसका फल कहने लगे। हिमालय पर्वत के पास महर्षि असित* का आश्रम था। ये उस समय में सबसे बड़े ज्योतिर्विद माने जाते थे। जब असित ऋषि को मालूम हुआ कि कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन के घर एक राजकुमार का जन्म हुआ है, तब वे अपने भागिनेय नारद को अपने साथ ले कपिलवस्तु पहुँचे। महाराज शुद्धोदन ने महर्षि असित की उचित अभ्यर्थना की और उन्हें शिष्यों के साथ ठहराया। महर्षि असित ने राजा के भाग्य की प्रशंसा कर कुमार को देखने की इच्छा प्रकट की। महाराज ने तुरंत सिद्धार्थ कुमार को लाकर उनके चरणों में रक्खा। असित ने बालक को बहुत कुछ आशीर्वाद दिया और उठा लिया। वे बालक के शरीर के लक्षणों और अनुव्यञ्जनों की परीक्षा करने लगे। उन्होंने बालक सिद्धार्थ के शरीर में बत्तीस प्रकार के महापुरुष के लक्षण † और

---

* असित देवल को कालदेवल भी कहते थे। वह शुद्धोदन के पिता सिंहहनु के आमात्य थे। वृद्धावस्था में वाणप्रस्थाश्रम ग्रहण कर हिमगिरि के नीचे रहते थे।

† कतमैतद्द्वात्रिंशता—

तद्यथा----उष्णीषशीर्षो (महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः) अनेन प्रथमेन महापुरुषलक्षणेन समन्वगतः सर्वार्थसिद्धः कुमारः अभिन्नां जनमयूर कलापाभिनीलवेल्लितप्रदक्षिणावर्तकेशः। समविपुलललाटः। ऊर्णा (महाराज सर्वार्थसिद्धस्य) भ्रुवो मध्य जाता हिमरजतप्रकाशा। गोपक्ष्मनेत्राभिनीलनेत्रः। समचत्वारिंशद्दन्तः। अविरलदन्तः। शुक्लदन्तः। ब्रह्मस्वरो (महाराज सर्वार्थ-

---

र्थसिद्धः कुमारः)। रसरसाग्रवान् , प्रभूततनुजिह्वः। सिंहहनुः।·सुसंवृतस्कन्धः।
सप्तच्छदोच्छ्रितांसः। सूक्ष्म सुवर्णवर्णच्छायिः। स्थितः।.. अनवनतप्रलंबबाहुः।
सिंह पूर्वार्धकायः। न्यग्रोधपरिमंडलो (महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः)
एकैक रोमकदूर्ध्वग्राहि प्रदक्षिणा। कोशोपगतबस्तिगुह्यः। सुविवर्तितोरुः।
ऐणेयमृगराजजंघः। दीर्घांगुलिः। आयतपार्ष्णिपादः। मृदुतरुणहस्तपादः।
त्वि आंगुलिकहस्तपादः। दीर्घांगुलिधरः पदतलयो (महाराज सर्वार्थसिद्धस्य
कुमारस्य) चक्रे जाते चित्रेऽर्चिष्मती प्रभास्वरे सितरुहसनेमिके सनाभिके।
सुप्रतिष्ठित समपादो (महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः)। अनेन महाराज
द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणेन समन्वगतः सर्वार्थसिद्धः कुमारः।

ललितविस्तर अ० ७

* कतमानि च तानि महाराजाशीत्यनुव्यंजनानि—

तद्यथा— तुंगनखश्च (महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। ताम्रनखश्च, स्निग्धनखश्च, वृत्तांगुलिश्च, अनुपूर्वचित्रांगुलिश्च, गूढशिरश्च, गूढगुल्फश्च, घनसंधिश्च, अविषमसमपादश्चायतपादपार्ष्णिश्च (महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। स्निग्धपाणिलेखश्च, तुल्यपाणिलेखश्च, गंभीरपाणिलेखश्च, अजिह्मपाणिलेखश्चानुपूर्वपाणिलेखश्च, बिंबोष्ठश्चानुच्चशब्दवचनश्च, मृदुतरुणताम्रजिह्वश्च, गजगर्जिताभिस्तनितमेघस्वरमधुरमंजुघोषश्च, परिपूर्णव्यंजनश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। प्रलंबबाहुश्च, शुचिगात्रवस्तुसम्पन्नश्च, मृदुगात्रश्च, विशालगात्रश्चादीनगात्रश्चानुपूर्वगात्रश्च सुसमाहितगात्रश्च सुविभक्तगात्रश्च, पृथुविपुलसुपरिपूर्णजानुमंडलश्च, वृत्तगात्रश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। सुपरिमृष्टगात्रश्चाजिह्मगात्रश्चानुपूर्वगात्रश्च, गंभीरनाभिश्चाजिह्मनाभिश्चानुपूर्वनाभिश्च शुच्याचारश्च ऋषभवत्समन्तप्रासादिकश्च, परमसुविशुद्धवितिमिरालोकसमप्रभश्च, नागविलंबितगतिश्च [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। सिंहविक्रांतगतिश्च, ऋषभविक्रांतगतिश्च हंसविक्रांतगतिश्चाभिप्रदक्षिणावर्त गतिश्च, वृत्तकुक्षिश्चाजिह्मकुक्षिश्च, चापोदरश्च, व्यपगतच्छिद्रदोषनीलकादुष्टशरीरश्च, वृत्तदंष्ट्रश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। तीक्ष्णदन्तश्चानुपूर्वदंष्ट्रश्च तुंगनासश्च,

से कहा—"राजन्! आप बड़े भाग्यशाली और सुकृति हैं। आपने पूर्व जन्म में बड़ी तपस्या की थी जो आपको भगवान् ने सर्व-लक्षण-सम्पन्न पुत्र दिया है। ऐसा पुत्र बड़े भाग्य से अनेक जन्मों के पुण्य के उदय से ही उत्पन्न होता है। इस बालक में महापुरुष के बत्तीस लक्षण और अस्सी अनुव्यंजन हैं। यह बालक यदि संसार में गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त होगा तो चक्रवर्ती सम्राट् होगा; और यदि यह संन्यासाश्रम ग्रहण करेगा तो स्वयं मोक्ष लाभ कर अन्यों के लिये अप्रावृत्त मोक्षमार्ग का उद्घाटन करेगा और सम्यक् संबुद्ध होगा। यह कह महर्षि असित विदा हो अपने आश्रम को सिधारे। चलते समय अपने प्रिय शिष्य और भागिनेय नारद से कहा—"नारद! मैं तो वृद्ध हो चुका हूँ। सम्भव है कि मैं शीघ्र ही मर जाऊँ। पर यदि यह कुमार संन्यास ग्रहण करे तो तुम अवश्य इसके शिष्य होकर निर्वाण पद की जिज्ञासा करना।"

शुचिनयनश्च, विशालनयनश्च, नीलकुवलयदलसदृशनयनश्च, सहितभ्रूश्च, [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः] चित्रभ्रूश्च, संगभ्रूश्चानुपूर्वभ्रूश्चासित-भ्रूश्च, पीनगंडश्चाविषमगंडश्चव्यपगतगंडदोषश्चानुपहतक्रुष्टश्च, सुविदितेंद्रियश्च, सुपरिपूर्णेंद्रियश्च [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। संगतमुख-ललाटश्च, परिपूर्णोत्तमांगश्चासितकेशश्च, संहितकेशश्चानुपूर्वकेशश्च, श्रीवत्सस्वस्तिकनन्द्यावर्तवर्द्धमानसंस्थानकेशश्च [महाराज सर्वार्थसिद्धः कुमारः]। इमानि तानि [महाराज सर्वार्थसिद्धस्य कुमारस्य] अशीत्यनुव्यंजनानि। ललितविस्तर, अध्याय ७

(४) शिक्षा

मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषोवेद।

यद्यपि सिद्धार्थ कुमार को उनकी माता महामाया सात दिन का छोड़कर परलोक सिधारी थीं, पर उनकी विमाता महाप्रजावती ने उनको बड़े प्यार से पाला और वे कुमार को राजोचित शिक्षा देती रहीं। महाराज शुद्धोदन ने अपने कुल-पुरोहित उदयिन को बुलाकर बालक के नामकरण, निष्क्रमण आदि सब संस्कार कराए। कुमार अत्यंय गंभीर, शांत और दयालु थे। कहते हैं कि एक बार कुमार शाक्यकुमारों के साथ कपिलवस्तु नगर के बाहर खेल रहे थे कि देवदत्त नामक एक शाक्य कुमार ने अपने बाण से लक्ष्य लगाकर एक पक्षी को मारा। बाण के लगते ही पक्षी पृथिवी पर गिर पड़ा। उसको पकड़ने के लिये सब लड़के दौड़े। पर सिद्धार्थ ने सब से पहले दौड़कर उसे उठा लिया और उसके शरीर से बाण निकाल कर अपने पैर में उसकी नोक को चुभोया। इस परीक्षा से उन्होंने पक्षी की पीड़ा का अनुभव कर उसे अपनी गोद में उठा लिया और उसको तब तक अपनी आँखों से दूर न किया जब तक कि पक्षी बिलकुल नीरोग न हो गया।

जब कुमार की अवस्था आठ वर्ष की हुई तब शुद्धोदन ने शुभ मुहूर्त में महर्षि कौशिक को बुलाकर उनका व्रतबन्ध संस्कारः कराया। कुमार सिद्धार्थ को मृगचर्म, मेखला, दंड आदि देकर ब्रह्म-चारी बनाया गया। पिता ने "अपोशन, कर्म कुरु, दिवा या स्वाप्सी,

आचार्याधीनो वेदमधीष्व, क्रोधानृते वर्जय" इत्यादि सदुपदेश * दे कर कुमार सिद्धार्थ को चंदन की पट्टिका दे कौशिक विश्वामित्र के चरणों में समर्पण किया। परम कारुणिक विश्वामित्र जी कुमार को "सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्माप्रमदः। आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमादितव्यं। धर्मान्न प्रमादितव्यं। कुशलान्न प्रमादितव्यं। भूत्यै न प्रमादितव्यं। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमादितव्यं। देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमादितव्यं।" का उपदेश दे सावित्री मंत्र का उपदेश किया और फिर कुमार को अपने साथ ले वे अपने आश्रम को सिधारे।

कुमार सिद्धार्थ विश्वामित्र जी के साथ उनके आश्रम पर आए। *तब विश्वामित्र जी ने उन्हें वर्ण-ज्ञान कराया और शिक्षा के नियम* के अनुसार प्रत्येक वर्ण के आस्य, प्रयत्न इत्यादि बताकर वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करना सिखलाया। फिर चंदन की पाटी पर ब्राह्मी, †

---

* वर्जयेन्मधुमांसं च गंधमाल्यं रसान्स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।
अभ्यंगमंजनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणं।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्।
द्यूतं च जनवादं च परीवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालंभमुपघातं परस्परम्।
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः [मनु]

† ब्राह्मीं, खरोष्ट्री, पुष्करसारीं, अंगलिपिं, वंगलिपिं, मगधलिपिं, मांगल्यलिपिं, मनुष्यलिपिं, अंगुलीयलिपिं, शकारिलिपिं, ब्रह्मवल्लीलिपिं,

खरोष्ट्री आदि लिपियों का लिखना सिखाकर लिपिबोध कराया। फिर क्रमशः कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष्, वेदों के षड़ंग पढ़ाकर ऋक, यजुष्, साम और अथर्व वेद उनके ब्राह्मण और रहस्य सहित पढ़ाए। सिद्धार्थ कुमार ने चारों वेद, जिन्हें अन्य विद्यार्थी ४८ वर्ष में भी कठिनता से समाप्त करते थे, अल्पकाल ही में बड़ी योग्यता से पढ़ लिए। आचार्य्य विश्वामित्र ने अपने इस योग्य शिष्य की प्रखर बुद्धि से अति विस्मित हो उसे दर्शनशास्त्र की शिक्षा देनी प्रारंभ की और वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदांत के अतिरिक्त, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, पुराण, बार्हस्पत्य, निगम इत्यादि विषयों की शिक्षा दी *।

द्राविडलिपिं, किनारिलिपिं, दक्षिणलिपिं, उग्रलिपिं, संख्यालिपिं, अनुलोमलिपिं, अर्द्धधनुलिपिं, दरदलिपिं, खास्यलिपिं, चीनलिपिं, हूणलिपिं, मध्याक्षरविस्तरलिपिं, पुष्पलिपिं, देवलिपिं, नागलिपिं, यक्षलिपिं, गंधर्वलिपिं, किन्नरलिपिं, महोरगलिपिं, असुरलिपिं, गरुडलिपिं, मृगचक्रलिपिं, चक्रलिपिं, वायुमरुल्लिपिं भौमदेवलिपिं, अंतरिक्षदेवलिपिं, उत्तरकुरुद्वीपलिपिं, अपरगौडानिलिपिं, पूर्वविदेहलिपिं; उत्क्षेपलिपिं; निक्षेपलिपिं; विक्षेपलिपिं; प्रक्षेपलिपिं; सागरलिपिं; वज्रलिपिं; लेखप्रतिलेखलिपिं; अनुद्रुतलिपिं; शास्त्रावर्तलिपिं; गणनावर्तलिपिं; उत्क्षेपावर्तलिपिं; निक्षेपावर्तलिपिं; पादलिखितलिपिं; द्विरुत्तरपदसंधिलिपिं; यावद्दशोत्तरपदसंधिलिपिं; मध्याहारिणीलिपिं; सर्वरुतसंग्रहणीलिपिं; विद्यानुलोमलिपिं; विमिश्रितलिपिं; ऋषितपस्तप्तां च धरणीप्रेक्षणीलिपिं। सर्वौषधि निष्यंदां, सर्वसारसंग्रहणीं, सर्वभूतरुतग्रहणीं। ललित०

* हीनयान का मत है कि भगवान बुद्धदेव को सब ज्ञान और विद्या विना पढ़ाए और सिखाए आ गई थीं।

सिद्धार्थकुमार शिक्षा-ग्रहण के समय अन्य विद्यार्थियों की तरह शुष्क विवाद में कभी प्रवृत्त नहीं होते थे। वे 'श्रोतव्यं, मंतव्यं निदिध्यसितव्यं' के उपदेश के अनुसार गुरु के प्रत्येक पाठ को एकांत में बैठकर मनन करते थे और मनन करने पर उनका निदिध्यासन करते थे। वे समझते थे कि जिन विशालहृदय महर्षियों का यह उपदेश है कि 'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।' वे कभी किसी को लकीर का फकीर बनने के लिये बाध्य नहीं कर सकते थे। उन्होंने सांख्य के 'अथ त्रिविधदुःखादत्यंतनिवृत्तिरत्यंत पुरुषार्थः' के उपदेश को अपने अंतःकरण में धारण कर प्रतिज्ञा की कि यदि हो सका तो मैं इन दुःखों से, जिनसे समस्त जगत् के प्राणी पीड़ित हो रहे हैं, अत्यंत निवृत्त होने का मार्ग ढूँढूँगा; और यदि ऐसा मार्ग मुझे मिल गया तो मैं उसे अकेले ही जानकर न रह जाऊँगा, किंतु उस अमूल्य बात को सारी सृष्टि के सामने प्रकट कर दूँगा। इस प्रकार अर्थात् विद्या को मनन करते हुए सिद्धार्थकुमार ने ऋषि आश्रम में अपना ब्रह्मचर्य्याश्रम बिताया।

स ब्रह्मचारी गुरुगेहवासी,
तत्कार्य्यकारी विहितान्नभोजी,
सायं प्रभातं च हुताशसेवी,
व्रतेम वेदां च समध्यगीष्ट।

(५) समावर्तन और विवाह

विद्याविवादरहिता, धृतशीलशिक्षा,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन वभूषिता ये।
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।

सिद्धार्थ पचीस वर्ष के हो गए। उनका विद्याध्ययनकाल समाप्त हो गया। पहले भी शास्त्र के नियमानुसार वे विद्यास्नातक हो सकते थे, पर उन्होंने अपना व्रतकाल वेदार्थ के चिंतन और मनन में गुरुकुल में ही विताया—

क्रियाद्यनुष्ठानफलोर्थबोधः
स नोपजायेत विना विचारम्।
अधीत्य वेदानथ तद्विचारम्
चकार दुर्वोधतरो हि वेदः।

महाराज शुद्धोदन वड़े गाजे वाजे के साथ विश्वामित्र जी के आश्रम पर गए और सिद्धार्थ कुमार का समावर्तन संस्कार करा उन्हें गुरुदक्षिणा में वहुत सा धन, गो, हाथी, घोड़े आदि देकर वड़े आनंद से कपिलवस्तु ले आए। शाक्य प्रजा और राजरिवार कुमार को रूपविद्यासंपन्न देख वड़े आनंदित हुए और राजमार्ग अनेक प्रकार के ध्वजा-तोरण आदि से सुसज्जित किया गया। स्त्रियाँ अटारियों से उन पर पुष्प और खीलों की वृष्टि करने लगीं। इस प्रकार वड़े गाजे

बाजे से कुमार ने नगर में प्रवेश किया। कुमार के रहने के लिये राजा ने एक उत्तम आराम और प्रासाद नियत कर दिया।

कुमार एकांतवास के बड़े ही प्रेमी थे। वे अपने आराम में सदा एकांत में त्रिविध दुःखों की निवृत्ति के उपाय की खोज में लगे रहते थे। वे बहुत कम आराम के बाहर निकाल करते थे। उस समय के राजा आजकल के राजाओं की तरह अपना सारा जीवन काम-भोग या आमोद-प्रमोद में नहीं व्यतीत करते थे। स्वयं महाराज जनक कृषिकर्म करते थे। महाराज शुद्धोदन के यहाँ भी खेती होती थी। एक दिन की बात है कि सिद्धार्थ नगर के बाहर खेत देखने गए और वहाँ खेत के पास ही जामुन के एक पेड़ के नीचे ❀ एकांत देख ध्यान में मग्न हो बैठे। इस प्रकार चलते फिरते उठते बैठते वे सदा इसी चिंता में लगे रहते थे कि किस प्रकार मनुष्य त्रिविध तापों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। महात्मा कपिल का वाक्य 'अथ त्रिविधदुःखात्यंतनिवृत्तिरत्यंतपुरुषार्थः' उनके ध्यान में सदा अंकित रहता था। उनका चित्त सदा सांसारिक सुख-भोगों से उदासीन रहता था और

---

† कहते हैं कि इस जामुन के पेड़ के नीचे कुमार ने चतुर्विध ध्यान की सिद्धि प्राप्त की थी जिसे देख पांच देवताओं ने कुतूहलवश निम्नलिखित गाथाएं गाई थीं;—

लोकक्लेशाग्निसंतप्ते प्रादुर्भूतोऽयं ह्रदः।
अयं तं प्राप्स्यते धर्मं यज्जगन्मोचयिष्यति ॥ १ ॥
अज्ञानतिमिरे लोके प्रादुर्भूतः प्रदीपकः।
अयं तं प्राप्स्यते धर्मं यज्जगत्तारयिष्यति ॥ २ ॥
शोकसागरकांतारे यानश्चेमुपस्थितम्।
अयं तं प्राप्स्यते धर्मं यज्जगत्तारयिष्यति ॥ ३ ॥

यद्यपि अन्य शाक्य कुमार समाज * योजनाओं में बड़ी उत्कंठा दिखलाते और उसके लिये अनेक आयोजन करते और सम्मिलित होते थे, पर सिद्धार्थ कुमार बार बार प्रार्थना किए जाने पर भी उनमें कभी नहीं जाते थे। उनका ध्यान सदा इसी लक्ष्य पर रहता था कि मैं कैसे संसार के दुःख का निदान और उसे निवृत्त करने का उपाय ढूँढूँ। वे अपनी इसी धुन में दिन रात लगे रहते; न उन्हें खाने की सुधि थी न सोने की। वे नित्य एकांत में बैठे संसार के दुःख का निदान सोचा करते थे। वे सुख दुःख की कुछ परवाह नहीं करते थे। भर्तृहरि ने ठीक कहा है—

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यंक शयनम्,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च मांसौदनरुचिः।
क्वचित्कंथाधारी क्वचिदपि च पाटांबरधरः,
मनस्वी कार्य्यार्थी गणयति च दुःखं न च सुखम्।

महाराज शुद्धोदन ने जब कुमार की यह दशा देखी तो उन्हें चिंता हुई कि ऐसा न हो कि कुमार इस वैराग्य की अवस्था में घर-

---

क्लेशबन्धनबद्धानां प्रादुर्भूतः प्रमोचकः।
अयं तं प्राप्यते धर्मं यज्जगन्मोचयिष्यति ॥ ४ ॥
जराव्याधिक्लिष्टानां प्रादुर्भूतोभिषग्वरः।
अयं तं प्राप्यते धर्मं जातिमृत्युप्रमोचकम् ॥ ५ ॥

* प्राचीन काल में बड़े बड़े जलसे जिनमें लोग मल्लयुद्ध करते थे, वा हाथी भैंसे आदि की लड़ाई होती थी अथवा कृत्रिम युद्ध [Sham Fight] किया जाता था, समाज कहलाते थे। उनमें दर्शकों के के लिये उत्तम मंच [Gallary] बनते थे और उनके खान-पान आमोद-प्रमोद की सामग्री एकत्र की जाती थी।

चार छोड़कर जंगल की राह लें। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि कुमार क्षत्रियोचित मार्ग का अवलंबन करें और वीर योद्धा बनें। पर जब उन्होंने यह देखा कि कुमार क्षात्रधर्म की उपेक्षा करके ब्राह्मधर्म की ओर झुक पड़े और दिन रात ब्रह्मविद्या के चिंतन में निमग्न रहते हैं, तो उन्हें चिंता ने और घेर लिया और उनकी आँखों के सामने अंधकार छा गया। असित की बातें उन्हें याद आईं। वे बहुत घबराए और उन्होंने कुमार को विवाह-बंधन में बाँधना निश्चित किया।

जब सिद्धार्थ कुमार को यह ज्ञात हुआ कि मेरे समाजों में सम्मिलित न होने और एकांत-सेवन से पिता को क्षोभ हो गया है और वे समझते हैं कि मेरी शस्त्रविद्या विस्मृत हो गई है, तब एक दिन उन्होंने समाज में जाकर पिता का क्षोभ दूर करने का संकल्प किया। एक दिन जब समाज की आयोजना की गई और समस्त शाक्य धनुर्धर एकत्र हुए, तब सिद्धार्थ समाज के आँगन में उतरे और उन्होंने अपने शस्त्र-कौशल से समस्त धनुर्धरों और योद्धाओं के छक्के छुड़ा दिए। शुद्धोदन का क्षोभ जाता रहा और उन्हें निश्चय हो गया कि सिद्धार्थ न केवल अध्यात्मविद्या ही में कुशल हैं, अपितु वे धनुर्वेद के भी अद्वितीय पंडित और महारथी हैं।

अपने पुत्र को इस प्रकार अध्यात्म-विद्या और धनुर्विद्या में कुशल देख महाराज शुद्धोदन ने एक दिन अपने पुरोहित को सम्मानपूर्वक बुलाकर उनसे निवेदन किया कि सिद्धार्थ कुमार अब विवाह के योग्य हुए हैं। आप उनके योग्य कोई वधू कपिलवस्तु, देवदह

आदि राज्यों में ढूँढ़िए। पुरोहित राजाज्ञा पाकर अपने घर गए और योग्य वधू की टोह में लगे। बहुत छान बीन करने पर उनको देवदह के महाराज दंडपाणि की कन्या गोपा * सर्वगुणसंपन्न देख पड़ी और उसीके साथ सिद्धार्थ कुमार का परिणय करने की उन्होंने दंडपाणि से बात चीत की। दंडपाणि सिद्धार्थ कुमार की माता के भाई थे औऱ सिद्धार्थ को अच्छी तरह जानते थे। पुरोहित की बात भी भली लगी और उन्होंने अपने पुरोहित अर्जुन नामक पंडित को कुमार की परीक्षा के लिये भेजा। अर्जुन कपिलवस्तु आए और उन्होंने वेद वेदांग दर्शन आदि में सिद्धार्थ कुमार की परीक्षा ली। कुमार के उत्तर प्रत्युत्तर सुन महाविद्वान् अर्जुन पंडित को अत्यंत तोष हुआ और विवाह करना निश्चय हो गया। शुभ मुहूर्त में कुमार का विवाह देवदह की राजकुमारी गोपा के साथ बड़े गाजे बाजे के साथ किया गया। दंडपाणि ने बड़ा आदर सत्कार किया और अनेक घोड़े, हाथी और धनसंपत्ति विवाह की दक्षिणा में दी। वर और वधू विवाह हो जाने पर अनेक दास और दासियों के साथ कपिलवस्तु आए और आनंदपूर्वक रहने लगे।

---

* यशोधरा, कृष्णा, उत्पलवर्णा भी इसके नाम थे।

(६) उद्बोधन

वनेपि दोषाः प्रभवंति रागिणाम्
गृहेपि पंचेंद्रियनिग्रहस्तपः ।
निवृत्तिः कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहस्तपोवनम् ।

शाक्य कुमार का विवाह हो गया; बधू आई; पर फिर भी उनका एकांतवास न गया। वे नित्य अपने आराम में बैठे हुए जन्म-मरण के प्रश्नों पर विचार किया करते थे। वे अपने मन में विचारते थे कि प्राणियों में अहंभाव क्यों उत्पन्न होता है ? क्या चेतना शरीर से पृथक् किसी परोक्ष द्रव्य का गुण है जिसे लोग आत्मा कहते हैं ? यह आत्मा शरीर से पृथक् वस्तु है वा शरीर ही का कोई अंश विशेष है ? इसकी स्थिति शरीर से पृथक् है अथवा यह शरीर के साथ ही पंचत्व को प्राप्त हो जाती है ? यदि यह शरीर से पृथक् है तो यह कहाँ से आती है और शरीर का नाश होने पर कहाँ जाती है ? इसे क्यों दुःख वा सुख होता है ? क्या कोई ऐसी अवस्था वा देश भी है जिसमें दुःख का अभाव हो ? यदि दुःख न हो तो सुख का अनुभव कैसे हो सकता है ? सुख के अभाव में दुःख का ज्ञान कहाँ ? यह दोनों सापेक्ष हैं वा निरपेक्ष ? यदि निरपेक्ष हैं तो द्वंद्व कैसा ? यदि सापेक्ष हैं तो इनमें से एक का अत्यंताभाव किसी देश, काल वा अवस्था में कैसे संभव हो सकता है ? क्या ये वास्तव में कोई निश्चित वस्तुएँ हैं ? यदि निश्चित हैं तो

एक ही वस्तु क्यों एक मनुष्य को सुखकर और दूसरे को दुःख-दायक प्रतीत होती है ? यदि निश्चित नहीं तो ये क्या हैं ? इनका भान क्यों होता है ? इत्यादि। इस प्रकार के प्रश्न उनके मन में उत्पन्न होते थे, पर उनका कोई निश्चित समाधान वे नहीं कर पाते थे। वे दिन रात एकांत में अपने इन विचारों में मग्न रहते थे। न उन्हें आमोद से कुछ काम था न प्रमोद से। उनके चित्त में विराग था और सच्चा विराग था।

जब महाराज शुद्धोदन ने देखा कि राजकुमार का चित्त दिन दिन उदासीन होता जाता है, तब उन्होंने राजकुमार के लिए एक ऐसा प्रासाद बनवाया जिस में षड्ऋतु की छटा नित्य उपस्थित रहती थी और जिसे कामोद्दीपन की समस्त सामग्रियों से सुसज्जित किया था। अनेक रूप-यौवन-संपन्न और कामक्रीड़ा-कुशल दास दासियाँ वहाँ कुमार के चित्त को आकर्षण करने के लिए नियत की गईं। नाना प्रकार के कामोद्दीपक अन्न-पान और भक्ष्य-भोज्य का प्रबंध वहाँ कर दिया गया और कुमार को उस प्रासाद में रहने के लिए आज्ञा दी गई। कुमार सिद्धार्थ उस प्रासाद में गए और रहने लगे। उस प्रासाद के सुख और वहाँ के दास दासी किसी में यह शक्ति न थी कि उनके चित्त को सांसारिक सुखों की ओर खींच सके और कुमार को चिंतित रहने से रोक सके। कुमार वहाँ भी एकांत में बैठे अपने चित्त में यही सोचा करते थे कि संसार दुःख का सागर है। प्राणियों का जीवन क्षण-भंगुर है। सब पदार्थ अपनी अवस्था बदला करते हैं। मानव-जीवन जल-बुदबुद के समान है।

गर्मी के बाद जाड़ा और जाड़े के बाद गर्मी आती है। द्वन्द्वचक्र सदा चला करता है। जो फूल आज पेड़ों पर हैं, वह कल पृथिवी पर गिरेगा। कोई पदार्थ नित्य नहीं दिखाई पड़ता। फिर क्यों लोग अपने सारे जीवन भर "मेरा तेरा" किया करते हैं ? हम पैदा होते समय क्या साथ लाए थे ? फिर यह अपने और पराए का भाव कहाँ से आया ? जब संसार दुःखमय है तब लोग इसे छोड़ क्यों नहीं देते ? छोड़ दें तो कहाँ जायँ ? जंगलों में भी भूख-प्यास और आशा-तृष्णा साथ न छोड़ेंगी। क्या इनसे बचने का कोई उपाय हो सकता है ? इत्यादि।

इस प्रकार इस प्रासाद में रहते सिद्धार्थ को कई वर्ष बीत गए। जब कुमार अट्ठाईस वर्ष के हुए, तब महाराज शुद्धोदन को यह सुन अत्यंत प्रसन्नता हुई कि गोपा गर्भवती है। उनकी मुरझाई हुई आशा-लता फिर पनपने लगी और उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि संभव है कि मेरे इस प्रयत्न से सिद्धार्थ कुमार का चित्त वैराग्य से फिर जाय। गोपा को गर्भवती देख कपिलवस्तु में बड़ा आनंद मनाया गया और सब शाक्य आनंद-समाज में सम्मिलित हुए; पर कुमार अपनी धुन में ही लगे रहे। उन्हें संसार के बंधन से स्वयं छुटकारा पाने और संसार को छुड़ाने की चिंता लगी थी। वे एकांत में बैठे हुए संसार के दुःख का निदान सोचा करते थे।

एक दिन की बात है कि कुमार ने नगर से बाहर निकलने और आरामों में जाकर जी बहलाने की इच्छा प्रकट की। यह सुन महाराज शुद्धोदन ने सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि

राजमार्ग पर कोई बुड्ढा या रोगी इत्यादि न दिखाई पड़े और चारों ओर के स्थान ध्वजा तोरणादि से सुसज्जित किए जायँ। नगर बात की बात में सब प्रकार सुसज्जित किया गया। कुमार के लिये उत्तम रथ प्रासाद के द्वार पर लाया गया। कुमार ने सैर करने की तैयारी की और वे प्रासाद से उतरे और रथ पर चढ़े। सारथी ने घोड़े की वाग पकड़ी और उसको चाबुक लगाई। रथ राजमार्ग से होता हुआ आगे बढ़ा। जिस ओर नगर में कुमार जाते थे, चारों ओर ध्वजा, पताका, तोरण आदि से सुसज्जित प्रासादों से स्त्रियाँ पुष्प-वृष्टि करती थीं। रथ नगर के पूर्व द्वार से निकला। पर दैव-योग से कुमार को सड़क पर एक वृद्ध पुरुष दिखाई पड़ा। बुढ़ापे के कारण उसकी पीठ झुक गई थी और सारे शरीर पर झुर्रियाँ पड़ी थीं। उसकी आँखों की ज्योति धीमी हो गई थी, कानों से सुनाई नहीं पड़ता था। सब इंद्रियों ने जवाब दे दिया था। वह लाठी टेकता हुआ सड़क पर जा रहा था। सारथी उसे मार्ग से हटाने के लिये बहुत चिल्लाया, पर बहरा बूड्ढ़ा मार्ग से न हटा और अपनी लाठी टेकता हुआ सड़क के बीच से चलता रहा। सारथी ने विवश हो घोड़े की लगाम खींची और रथ रोका। अचानक कुमार की दृष्टि उस ज़राग्रस्त बुड्ढ़े पर जा पड़ी।

साधारण मनुष्यों और महात्माओं के जीवन में यही अंतर है कि साधारण मनुष्य अपने जीवन में सांसारिक घटनाओं को देखता हुआ उनसे उपदेश ग्रहण नहीं करता। नित्य तरह तरह की घटनाएँ हुआ करती हैं, पर वह उन पर कुछ ध्यान नहीं देता। पर महात्मा

लोग अपने जीवन में समस्त संघटित घटनाओं को बड़े कुतूहल से देखते हैं, उनके कारण का अन्वेषण करते हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण करते हैं। वे उनसे स्वयं लाभ उठाते हैं और अन्यों को लाभ उठाने का उपदेश करते हैं। वे साक्षात् कृतधर्मा होते हैं और हानि-कारक घटनाओं से बचने का उपाय ढूँढते हैं। वे स्वयं बचते हैं और औरों को बचाते हैं। सब मनुष्य अपने जीवन की घटनाओं से लाभ नहीं उठा सकते। उनके लिये ऐसे साक्षात्कृतधर्मा महर्षियों का उपदेश ही परम कल्याणकारी होता है। वैदिक काल के मह-र्षियों के उपदेश के विषय में महर्षि यास्काचार्य्य लिखते हैं—

'साक्षात्कृतधर्माणो ह ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत-धर्मेभ्य उपदेशेन मंत्रान्संप्रादुः'

वैदिक ऋषि साक्षात् कृतधर्मा थे। उन लोगों ने अन्यों के लिये जो साक्षात् कृतधर्मा नहीं थे, मंत्रों द्वारा उपदेश किया।

सिद्धार्थ कुमार इसी कोटि के महात्मा थे और उनके जीवन में यह पहला दृश्य था जिसने उन्हें प्रभावित किया। वे बहुत देर तक ठकमारे से बैठे रहे और उनके चित्त में नाना प्रकार की कल्प-नाएँ उत्पन्न हुईं। वे सोचने लगे कि यह बुड्ढा क्यों झुक गया है। इसकी आँखों से क्यों स्पष्ट दिखाई नहीं देता? इसके कान तो हैं, पर यह इतना चिल्लाने से सुनता क्यों नहीं? इसे क्या हो गया? किस कारण यह पुरुष इस अवस्था को प्राप्त हुआ? और अंत को जब उन्हें कुछ स्पष्ट कारण का पता न चला, तब वे अपने सारथी से जिसका नाम छंदक था, बोले—

किं सारथे पुरुष दुर्वल अल्पस्थाम
उच्छुष्कमांसरुधिरत्वचस्नायुनद्धः ।
श्वेतशिरो विरलदंत कृशांगरूप
आलम्ब्यदंडव्रजतेह सुखंस्खलन्त ॥

हे सारथी, यह पुरुष हाथ में लाठी लेकर टेकता हुआ क्यों लड़खड़ाता हुआ चलता है ? यह क्यों दुर्वल और स्थैर्य्यविहीन है ? इसका मांस और रक्त क्यों सूख गया है ? क्यों यह इतना दुर्वल हो गया है कि इसके शरीर की नसें देख पड़ती हैं ? इसके सिर के बाल क्यों श्वेत हो गए ? इसके दाँत क्यों टूट गए ? इसकी क्यों ऐसी अवस्था हो गई है ?

कुमार का यह वचन सुन उनका सारथी बोला—

एसो हि देव पुरुषो जरयाभिभूतः
क्षीर्णेंद्रियो सुदुःखितो बलावर्य्य हीनो ।
बंधूजनेनपरिभूत अनाथभूतः
कार्यासमर्थ अपविद्ध वने न दारु ॥

हे देव, इस पुरुष को जरा वा बुढ़ापे ने घेर लिया है। इसकी इंद्रियाँ क्षीण हो गई हैं। यह दुःखित और बल-वीर्य्यहीन है। ऐसा देख इसे इसके बंधुजनों ने त्याग दिया है। यह अनाथ है। जैसे जंगल का जीर्ण काठ निकम्मा हो जाता है, वैसे ही यह भी निकम्मा हो गया है।

सिद्धार्थ कुमार, जिन्होंने आज तक किसी जराग्रस्त पुरुष को नहीं देखा था और न जिनको यह ज्ञान ही था कि जरा क्या है,

सारथी का यह उत्तर सुन अत्यंत विस्मित हो विचार करने लगे कि जरा क्या वस्तु है ? क्या जरा किसी जाति विशेष को ही पीड़ित करती है वा सर्वसाधारण पर आक्रमण करती है ? और जब वे अपने इन कुतूहलों का संतोषजनक समाधान न कर सके, तब उन्होंने फिर सारथी से पूछा—

कुलधर्म एप आयमस्य हि त्वं भणाहिं
'अथवापि सर्वजगतोऽय इयं व्यवस्था ।
शीघ्रं भणाहि वचनं यथभूतमेतत्
श्रुत्वा तथार्थमिह योनिं संचिंतयित्वा ॥

सारथी ! यह बतला कि क्या यह इसका कुलधर्म है अथवा समस्त संसार की यही व्यवस्था है ? मुझे इसका शीघ्र उत्तर दे कि क्या जिस कुल में यह पुरुष उत्पन्न हुआ है, उसी कुल के लोग जराग्रस्त होते हैं या संसार के सब प्राणी जराग्रस्त होंगे ? तेरा उत्तर सुनकर मैं इसका निदान सोचूँगा ।

कुमार का यह प्रश्न सुन सारथी ने कुमार से कहा—

नेतस्य देव कुलधर्मो न राष्ट्रधर्मः
सर्वे जगस्य जर यौवन धर्पयाति ।
तुभ्यंपि मातृपितृबांधवज्ञातिसंघो
जरया अमुक्त नहि अन्यगतिर्जनस्य ॥

देव ! जराग्रस्त होना न इस मनुष्य का कुलधर्म है और न जरा राष्ट्रधर्म है । समस्त जगत् के यौवन को जरा ध्वस्त करती है । यह न आपको छोड़ेगी, न आपके माता पिता को छोड़ेगी और न इससे

आपके जाति-बंधु बच सकेंगे। सब प्राणियों को जरा परास्त करेगी। सब एक न एक दिन जराग्रस्त होंगे। जरा से कोई बच नहीं सकता।

सारथी की यह बात सुनकर कुमार के मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। उनका अंतःकरण वैराग्य से पूर्ण हो गया। उन्होंने मनुष्यों की इस अवस्था पर विचार किया कि लोग जानते हैं कि हम एक दिन जराग्रस्त होंगे, पर फिर भी वे अपने यौवन पर इतराए फिरते हैं। सिद्धार्थ कुमार ने सारथी से कहा—

धिक् सारथे अबुधबालजनस्य बुद्धिं
यद्यौवनेन मदमत्त जरां न पश्यी।
आवर्तयास्विह रथं पुनरहं प्रवेक्ष्ये
किं मह्यक्रीड़रतिभिर्जरयाश्रितस्य॥

सारथी! धिक्कार है उस अबोध मनुष्य की बुद्धि को, जो जवानी के मद में इतराया फिरता है और जरा की ओर ध्यान नहीं देता। रथ घुमाओ, मैं इस मनुष्य को फिर ध्यानपूर्वक देखूँगा। जब मैं भी जराग्रस्त होऊँगा, तब मुझे क्रीड़ा में रत होने से क्या काम?

सारथी ने कुमार की आज्ञा पा रथ घुमाया। कुमार रथ से उतर पड़े और बड़ी देर तक ध्यानपूर्वक उस बुड्ढे को देखते रहे। फिर रथ पर सवार होकर प्रासाद को गए।

वे रात दिन यही सोचते रहे कि जब मनुष्य को बुढ़ापा अवश्य घेरेगा, तब बड़े शोक की बात है कि वह यौवनावस्था के मद में मत्त

हा आनेवाली जरा को दूर करने की चेष्टा नहीं करता। क्या कोई उपाय है कि जरा से मनुष्य बच सके ? क्या वैद्यों के पास कोई जरा नामक महाव्याधि का औषध है ? यदि नहीं तो उन लोगों ने क्यों इसके हटाने की आज तक चिंता नहीं की ? क्या यह असाध्य रोग है ? पर यदि यह रोग है तो किसी एक को होना चाहिए; यह तो संसार के सभी जड़ चेतन पर आक्रमण करता है। क्या यह अवस्था है ? क्या इस अवस्था से बचने का कोई उपाय है वा हो सकता है ? इस प्रकार की बातों को कुमार कई दिनों तक बार बार सोचते रहे।

कुछ दिनों के बाद एक दिन कुमार ने फिर नगर के बाहर जाने का संकल्प किया। महाराज शुद्धोदन ने फिर नगर में घोषणा करा दी और कुमार के लिये सारथी रथ ले प्रासाद के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। सिद्धार्थ कुमार ने प्रासाद से निकल और रथ पर बैठ सारथी से रथ हाँकने को कहा। कुमार नगर की शोभा देखते हुऐ रथ पर जा रहे थे। रथ नगर के दक्षिण द्वार से निकला। पर दैवयोग से नगर के बाहर कोई पुरुष असाध्य रोग से ग्रस्त था। रोगी बहुत दुर्बल हो गया था और उसके कुटुंबियों ने उसे घर के बाहर सड़क के पास धूप में लेटा दिया था। उसकी असाध्य अवस्था देख उसके घरवाले उसके पास बैठे रोते थे। कुमार का रथ ज्यों ही उस स्थान पर पहुँचा, दैववश कुमार की दृष्टि उस रोगी पर पड़ी। कुमार, जिन्होंने आज तक रोग का नाम भी नहीं सुना था, उसे देखकर बड़े कुतूहल से सारथी से पूछ बैठे—

किं सारथे पुरुषरूप विवर्णगात्रः
सर्वेंद्रियेभि विकलो गुरुप्रश्वसंतः।
सर्वांगशुष्क उदराकुल प्राप्तकृच्छ्रा
मूत्रे पुरीष स्वकि तिष्ठति कुत्सनीयः

हे सारथी, इस पुरुष का गात्र क्यों विवर्ण हो गया है ? इसकी सब इंद्रियाँ क्यों विफल हैं ? यह क्यों लंबी साँस ले रहा है ? इसके सब अंग क्यों सूख गए हैं ? इसका पेट क्यों फूल आया है, ? यह क्यों दुःखी है और अपने मूत्र-पुरीष में पड़ा हुआ है ?

कुमार का यह वचन सुन सारथी ने सविनय निवेदन किया—

एषो हि देव पुरुषो परमं गिलानो
व्याधीभयं उपगतो मरणांत प्राप्तः।
आरोग्य तेजरहितो बलविज्जहीनो
अत्राणवो असरणो ह्यपरायनश्च ॥

देव ! इसे रोग हो गया है। इसे बड़ी ग्लानि है । इसके मरने का समय आ गया है। इसका आरोग्य और तेज जाता रहा है। यह बल-वीर्यहीन हो गया है। इसके बचने की कोई आशा नहीं है। यह अशरण होकर यहाँ पड़ा है।

कुमार को सारथी की यह बात सुन बड़ी चिंता हुई। वे सोचने लगे कि व्याधि क्या वस्तु है ? क्या कोई औषधि ऐसी नहीं है जो व्याधि को संसार से जड़ से दूर कर दे और इसका नाम भी न सुनने में आवे ? इस समय सिद्धार्थ को सांख्य का दूसरा सूत्र "नदृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेपि अनुवर्तदर्शनात्" याद आया। उन्होंने अपने

मन में कहा कि नहीं, संसार में ऐसा कोई औषध नहीं है जो व्याधि को जड़मूल से खो सके। वे अपने सारथी से बोले—

> आरोग्यता च भवते यथ स्वप्नक्रीड़ा
> व्याधिभयं च इम ईदृश घोररूपम्।
> को नाम विज्ञपुरुषो इम दृष्ट्ववस्था
> क्रीडारतिं च जनयेत्सुभसंज्ञितां वा॥

हे सारथी! यदि आरोग्यता स्वप्न के खेल के समान है और व्याधि के ऐसा घोर भय इसके पीछे लगा है, तो फिर कौन बुद्धिमान् इस अवस्था को देखता हुआ क्रीड़ा में निरत होगा और संसार को शुभ कहने का साहस करेगा।

यह कह सिद्धार्थ ने सारथी को रथ लौटाने की आज्ञा दी और वे उद्यान में सैर करने के लिये न गए। वे अपने प्रासाद को वापस आए और बहुत दिनों तक एकांत में बैठे इस विचार में मग्न रहे कि व्याधि से बचने का कौन सा अनुपम उपाय है जिससे प्राणी व्याधि से अत्यंत निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

इस घटना के थोड़े ही दिन पीछे सिद्धार्थ कुमार तीसरी बार उद्यान में जाकर चित्त बहलाने के विचार से अपने रथ पर सवार हो नगर से होते हुए उस के पश्चिम द्वार से निकले। दैवयोग से वहाँ उनके उद्‌बोधन के लिये तीसरा दृश्य उपस्थित था। किसी गृहस्थ के यहाँ उसका कोई संबंधी मर गया था और सारे कुटुम्ब के लोग उसके शव को अरथी पर लिए विलाप करते जा रहे थे। कुमार ने आज तक किसी पुरुष को मरते नहीं देखा था। उनका ध्यान

उसके कुटुम्बियों के रोने की ओर गया। उन्होंने देखा कि एक मनुष्य को वस्त्र में लपेट खाट पर लेटा चार मनुष्य कंधे पर उठाए लिए जा रहे हैं और वहुत से लोग उसके साथ साथ रोते जा रहे हैं। इस दृश्य को देख कुमार ने कुतूहलवश सारथी से पूछाः—

किं सारथे पुरुष मंचोपरि गृहीतो
उद्धूतकेश नखपांसु शिरे क्षिपंति।
परिचारयंति विहरंतस्ताडयंते
नानाविलापरचनानि उदीरयन्तिः॥

हे सारथी! इस पुरुष को कपड़े में लपेटकर खाट पर लेटा लोग क्यों उठाए लिए जाते हैं? ये लोग क्यों अपने हाथों से अपना सिर पीटते हैं, सिर पर धूल डालते हैं तथा अपना वक्षस्थल पीटते हैं? इसे कहाँ लिए जाते हैं और नाना प्रकार की वातें विलाप करते हुए क्यों कहते हैं?

कुमार की यह वातें सुनकर सारथी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—

एषो हि देव पुरुषो मृत जंवुद्वीपे
नहि भूय मातृपितृः द्रक्ष्यति पुत्रदाराम्।
अपहाय भोगगृहमातृपितृज्ञातिसंघम्
परलोक प्राप्तु नहिं द्रक्ष्यति भूय ज्ञातिम्॥

देव! जंवुद्वीप में इसे मृत कहते हैं। यह फिर अपने पिता माता पुत्र स्त्री आदि को नहीं देख सकता। यह पुरुष समस्त भोग, माता, पिता, जाति आदि का साथ छोड़कर परलोक को प्राप्त हो गया

है। अब यह पुनः अपने कुटुम्बियों और जातिवालों को नहीं मिलेगा।

सारथी की इस बात ने कुमार के हृदय को हिला दिया। उन्हें सारा संसार क्षण-भंगुर प्रतीत होने लगा। मानव जीवन का तत्व उनकी समझ में आ गया। वे जान गए कि यह जीवन, जिस पर समस्त प्राणी इतना घमंड करते हैं और जिसके लिये लोग बड़ी बड़ी सामग्री जोड़ते हैं, वास्तव में चिरस्थायी नहीं है। अज्ञानी पुरुष जीवन को स्थिर समझ बड़े बड़े अत्याचार करते हैं; उनको स्वप्न में भी इसका ध्यान नहीं रहता कि जीवन क्षणिक है। कुमार थोड़ी देर इस चिंता में मग्न रहे; फिर सारथी से बोले—

धिग्यौवनेन जरया समभिद्रुतेन
आरोग्य धिग्विविध व्याधि पराहतेन।
धिक् जीवनेन पुरुषो न चिरस्थितेन
धिक् पंडितस्य पुरुषस्य रतिप्रसंगैः॥
यदि नर न भवेयाः नैव व्याधिर्न मृत्यु-
स्तथपि च महद्दुःखं पंचस्कंधं धरंतो।
किं पुन जर व्याधि मृत्यु नित्यानुबद्धाः
साधु प्रतिनिवर्त्यो चिंतयिष्ये प्रमोचम्॥

यौवन को धिक्कार है, क्योंकि उसके पीछे जरा लगी हुई है। आरोग्य को धिक्कार है, क्योंकि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उसे ध्वस्त किया करती हैं। जीवन को धिक्कार है, क्योंकि मनुष्य का जीवन चिरस्थायी नहीं है। और उस पंडित को धिक्कार है

जो यह सब जानता हुआ रति-प्रसंग में निरत होता है। यदि संसार में जरा, व्याधि और मृत्यु न भी होती तो भी संसार पंचस्कंध होने से ही दुःखों का आगार था। फिर भी जरा, व्याधि और मृत्यु से यह नित्य अनुबद्ध है। अतः हे सारथी! रथ फिरा। मैं इनसे बचने के उपाय का चिंतन करूँगा।

सारथी ने रथ लौटाया और कुमार रथ से उतरकर प्रासाद में गए और कई दिनों तक एकांत में बैठे यह विचारते रहे कि वह कौन सा उपाय है जिसका अवलंबन कर मनुष्य जरा, व्याधि और मृत्यु से अत्यंत निवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

जब इस प्रकार चिंतन करने से कुमार को कोई उपाय न सूझा, तब घबराकर उन्होंने नगर के बाहर जाकर आराम में जी बहलाने का विचार किया और सारथी को रथ लाने की आज्ञा दी। सारथी रथ लेकर प्रासाद के द्वार पर उपस्थित हुआ और कुमार चौथी बार नगर के उत्तर द्वार के उद्यान में जाने के लिये प्रासाद से निकलकर रथ पर सवार हुए। सारथी ने घोड़े की बाग ली और रथ नगर के राजमार्ग से होकर उत्तर द्वार की ओर चला। ज्यों ही रथ उत्तर के द्वार से होकर निकला, कुमार की दृष्टि एक संन्यासी पर पड़ी जो कापाय वस्त्र धारण किए हाथ में कमंडल लिए शांतचित्त बैठा था। उस संन्यासी को देखकर कुमार ने सारथी से कहा—

किं सारथे पुरुष शांत प्रशांतचित्तो
नोत्क्षिप्तचक्षु व्रजते युगमात्र दर्शी।

काषायवस्त्रवसनो सुप्रशांतचारी
पात्रं गृहीत्व न च उद्धत ओनतो वा।

हे सारथी! यह शांत प्रशांतचित्त कौन पुरुष है? इसकी दोनों आँखें स्थिर हैं। यह काषाय वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र लिए शांत भाव से उद्धत और न अवनत होकर विचरता फिरता है।

कुमार की यह बात सुनकर सारथी ने उत्तर दिया—

एषो हि देव पुरुषो इति भिक्षुनामा
अपदाय कामरतयः सुविनीतचारी।
प्रव्रज्यप्राप्त सममात्मन एषमानो
संरागद्वेषविगतो तिष्ठति पिंडचर्य्या॥

हे देव! यह भिक्षु है। इसने काम और रति को त्याग, विनीत आचार ग्रहण किया है। संन्यास ग्रहण कर यह आत्मा की शांति चाहता हुआ राग और द्वेष परित्याग कर भिक्षाचरण कर जीवन व्यतीत कर रहा है।

सिद्धार्थ कुमार सारथी का यह उत्तर सुन बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें एक ऐसे पुरुष का परिचय मिला जिसने संसार के विषय-वासना से विरक्त हो अपना जीवन सच्चे सुख की प्राप्ति में लगा रक्खा था। कुमार उसकी प्रशांत आकृति देख मुग्ध हो गए। उन्हें ज्ञात हो गया कि संन्यास आश्रम ही एक ऐसा आश्रम है जिसे ग्रहण कर मनुष्य सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है। उन्होंने सारथी से कहा—

साधुभाषितमिदं ममरोचते च
प्रव्रज्यनाम वहुभिः सततंप्रशस्ता ।
हितमात्मनश्च परस्य हितं च यत्र
सुख जीवितं सुमधुरममृतं फलं च ।

हे सारथी ! तू साधु कहता है । तेरी यह बात मुझे रुचती है । प्राचीन महर्षियों ने संन्यास आश्रम की वड़ी प्रशंसा की है । यही एक आश्रम है जिसमें मनुष्य अपने और पराए हित का साधन कर सकता है । इस आश्रम में मनुष्य शांतिपूर्वक अपना जीवन सुख से भैक्ष्यवृत्ति द्वारा निर्वाह कर सकता है । इस आश्रम का फल सुमधुर मोक्ष है जिसे पाकर मनुष्य जरा-मरण से निवृत्त हो जाता है । उपनिषदों में कहा है—

वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः
ते ब्रह्मलोके तु परांतकाले
परामृता परिमुचंति सर्वे ।

---

(७) महाभिनिष्क्रमण

ब्रह्मचर्य्यात् गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा परिव्रजेत्।
यदहरे वविरजेत्तदहरेव परिव्रजेद्वनाद्वागृहाद्वा ॥

जिस दिन से कुमार को चौथा उद्बोधन हुआ, उसी दिन से वे इसी चिंता में लगे रहते थे कि वे किस प्रकार गृहाश्रम त्याग संन्यास आश्रम ग्रहण करें। वे यह जानते थे कि मनुष्य के ऊपर तीन ऋण होते हैं जिन्हें बिना चुकाए मनुष्य संन्यास आश्रम ग्रहण करने का अधिकारी नहीं हो सकता। विद्याध्ययन कर वे ऋषि-ऋण से मुक्त हो चुके थे और यज्ञ कर उन्होंने देव-ऋण से छुटकारा पाया था। पर अभी यशोधरा के गर्भ से कोई बालक नहीं उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वे जानते थे कि वह गर्भवती है, पर वे यह नहीं जानते थे कि गर्भ से पुत्र होगा वा पुत्री। अतः जब तक पुत्र का जन्म न हो ले, उन पर पितृ-ऋण का भार वैसा ही बना था और शास्त्रानुसार वे संन्यास आश्रम के अधिकारी नहीं हो सकते थे। वे इसी विचार में निमग्न थे कि एक दास ने अंतःपुर से आकर उनसे निवेदन किया कि "जय हो, कुमार की! महिषी यशोधरा के गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ है।" कुमार को पुत्रोत्पत्ति सुन हर्ष हुआ और उन्होंने अपने को तीनों ऋणों से मुक्त समझा। उन्हें आशा हुई कि अब मुझे संन्यास ग्रहण करने में कोई अड़चन नहीं रही। मैं ऋण-मुक्त हो गया और अब मैं मोक्ष पद का अधिकारी हुआ। मनु ने कहा है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्
ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणा।

ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण चुकाकर मनुष्य को अपना मन मोक्ष में लगाना चाहिए। पापों के क्षय हो जाने से पुरुषों में ज्ञान का उदय होता है।

यह सोच कुमार का मुख मोक्ष के आनंद से देदीप्यमान हो गया। पर थोड़ी देर के बाद जब उन्होंने पुत्र की उत्पत्ति से उत्पन्न राग के बंधनों पर ध्यान दिया तो उनके आनंद के चंद्रमा पर मानों राहु ने आक्रमण किया। उनका सारा मानसिक आनंद तिरोभूत हो गया। उन्होंने अपने को प्रेम-बंधन में जकड़ा हुआ पाया और कहा कि यह राहु है। इसी लिये कुमार का नाम राहुल रक्खा गया।

बहुत काल तक नाना प्रकार के संकल्प विकल्प करके सिद्धार्थ कुमार अपने प्रासाद से निकले और महाराज शुद्धोदन के पास गए। अपने पिता को नमस्कार कर उनके सामने हाथ जोड़कर उन्होंने नम्र भाव से कहा—"महाराज! आप खेद न करें और मुझे क्षमा करें। आपको इससे कोई विघ्न नहीं होगा। दैवयोग से अब मेरी प्रव्रज्या का समय आ गया। आप और आपके स्वजन तथा राष्ट्र के लोग मुझे सहर्ष गृहाश्रम त्यागने की आज्ञा दें।" पुत्र का यह वचन सुन शुद्धोदन ने कहा—"हे पुत्र! तुम गृहाश्रम क्यों छोड़ते हो? तुम्हारा क्या प्रयोजन है जो तुम मेरी आज्ञा माँगते हो? लो मैं तुम्हें अपना सारा राज्य, राजकुल, सब धन-संपत्ति प्रदान करता हूँ; पर तुम गृह-त्याग न करो।" पिता की यह बात

सुन कुमार ने कहा—"महाराज ! यदि आप मुझे चार वर दें तो मैं गृहाश्रम कदापि न त्याग करूँ। वे चार वर ये हैं (१) मैं बुड्ढा न होऊँ और सदा यौवनावस्था में रहूँ, (२) मैं सदा आरोग्य रहूँ, मुझे कभी कोई व्याधि न हो, (३) मैं अमर हो जाऊँ, कभी मृत्यु मेरे पास न आवे और (४) मेरी संपत्ति सदा बनी रहे और विपत्ति न आवे।" महाराज ने कुमार की यह बात सुन अत्यन्त दुःखित हो कहा—"हे कुमार ! जब कल्पांतस्थायी ऋषिगण भी जरा, व्याधि, मृत्यु और विपत्ति से मुक्त नहीं हो सके, तो मेरी क्या शक्ति है कि मैं तुम्हे इनसे बचा सकूँ।" पिता का यह वाक्य सुन सिद्धार्थ ने कहा—"महाराज ! यदि आप यह चार वर मुझे नहीं दे सकते तो कृपाकर मुझे यही आशीर्वाद दें कि अब मेरा इस संसार में पुनर्जन्म न हो।" पिता ने पुत्र के इस वचन के उत्तर में कहा—"तुम्हारा यह अभिप्राय अनुमोदनीय है कि संसार से मोक्ष प्राप्त हो, तुम्हारी यह आशा सफलीभूत हो। *

---

* सो चोत्थितो हि पुरतो नृपतिमवोचत्
मा भूयु विघ्न प्रकरोहि मा चैव खेदन्।
नैष्क्रम्यकालसमयो यथा देवयुक्तो
हन्त क्षमस्व नृपते सजनः सराष्ट्रः॥
तमश्रुपूर्णनयनो नृपतिर्बभाषे
किंचित्प्रयोजन भवेद्विनिवर्तनेते।
किं याचसे मम वरं वद सर्व दास्ये
अनुगृह्ण राज कुल मां च इदं च राष्ट्रं॥
बद्धोधिसत्त्व अवची मधुरप्रलापी
इच्छामि देव चतुरो वर तान्मे देहि।

कुमार महाराज शुद्धोदन का आशीर्वाद ले अपने प्रासाद में आए और यह सोचने लगे कि कैसे मैं कपिलवस्तु से निकलूँ। वे प्रव्रज्या ग्रहण करने की उधेड़-बुन में लगे। महाराज शुद्धोदन ने अपने पौत्र उत्पन्न होने के आनंद में मग्न हो आनंद-उत्सव के लिये समाज जोड़ा। प्रसिद्ध प्रसिद्ध गुणी, गायक और नर्तकियाँ बुलाई

यदिशक्यते ददितु मह्य यंचोति तत्र
तद्द्रक्ष्यसे सहगृहे नच निष्क्रमिष्ये ॥
पृच्छामि देव जर मह्य न आक्रमेया
शुभवर्ण यौवनस्थितो भवि नित्यकालं।
आरोग्य प्राप्तु भवि नो च भवेत व्याधि
[रमितायुपश्च भवि नो च भवेत मृत्युः ॥]
सम्पत्तितश्च विपुला न भवेद्विपत्ती ॥
राजा श्रुणित्व वचनं परमं दुखार्तो।
अस्थान याचसि कुमार नमेत्र शक्तिः
जरव्याधिमृत्युभयतश्च विपत्तितश्च
कल्पस्थितीय ऋषयो हि न जातु मुक्ताः ॥
श्रुत्वा पितुर्वचनमत्र कुमार योची
यदिदानिदेव चतुरो वर नो ददासि
जरव्याधिमृत्युभयतश्च विपत्तितश्च
हन्त श्रुणुष्व नृपते अपरं वरैकं
अस्वाच्युतस्य प्रतिसंधि न मे भवेय: ॥
श्रुत्वैवमेव वचनं नरपुंगवस्य
तृष्णातनुश्च करि छिंदति पुत्रस्नेहं
अनुमोदनीहितकरी जगति प्रमोषं
अभिप्राय तुभ्य परिपूर्यतु यन्मतं ते

ललितविस्तर अध्याय १५

गईं। कई दिन तक दिन रात आनंद उत्सव मनाया गया। स्वयं सिद्धार्थ कुमार को भी विवश हो उस नृत्य-गान में सम्मिलित होना पड़ा। जिस समय उस समाज में अन्य शाक्य अपनी कर्णेंद्रियादि के विषय में मग्न थे, सिद्धार्थ कुमार वहाँ बैठे अवसर देख रहे थे कि उन्हें कपिलवस्तु से प्रस्थान करने का अवकाश मिले। सच है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यते मुनौ।

उस समाज में बैठे बैठे कुमार के हृदय में चार प्रकार के प्रणिधानों का उदय हुआ। पहले यह कि संसार चार महा बंधनों में बद्ध है, इसे मुक्त करना चाहिए। दूसरे संसार घोर अविद्यांधकार से ग्रस्त है, इसे प्रज्ञाचक्षु प्रदान करना चाहिए। तीसरे, मनुष्यों के पीछे अहंकारस्मिता इत्यादि लगे हुए हैं, उन्हें आर्य्यधर्म का उपदेश कर निवृत्त करना चाहिए; और चौथे संसारी जीव धर्माधर्म के वशीभूत हो इस लोक से परलोक और परलोक से इस लोक में चक्कर लगाया करते हैं। इस आवागमन के चक्र से बचाने के लिये प्रज्ञातृप्ति प्राप्त कर धर्म का पता लगाकर उन्हें उपदेश करना चाहिए।

आज आषाढ़ मास की पूर्णिमा है। आधी रात हो गई है। कपिलवस्तु में कई दिन से आनंद उत्सव मनाया जा रहा है। सब लोग राग नृत्य देखते देखते थक गए हैं। उनकी इंद्रियाँ शिथिल हो गई हैं। सब लथ पथ हो गए हैं। मंडप में कोई कहीं कोई कहीं विश्राम कर रहा है। सब लोगों को शांत और क्लांत देख नर्तक-नर्तकी, गायक-गायिका आदि भी वहीं उन्मत्त की भाँति मंडप में गिर खर्राटे भरने

लगे हैं। सब लोग निद्रादेवी के वशीभूत हैं। केवल सिद्धार्थ कुमार एक कोने में बैठे अपने निकलने की चिंता में लगे हैं। भगवान् कुमुदिनी-नायक गगन-मध्य में आए हैं; मानों कुमार को यह संकेत कर रहे हैं कि सांसारिक सुख क्षणिक और परिणामी है, धीर पुरुष संसार से चित्त हटाकर ब्रह्मानंद की जिज्ञासा में निरत होते हैं। अचानक कुमार की आँख ध्यान से खुली। उन्होंने देखा कि सब लोग सो गए हैं और ऐसे सोए हैं कि किसी को कुछ सुध नहीं। उन्हें वह रंगभूमि श्मशान सी दिखाई पड़ी। उन्होंने देखा कि उन स्त्रियों की जिनका रूपसौंदर्य्य देख स्वर्ग की अप्सराएँ भी लजाती थीं, अद्भुत दशा हो रही है। किसी के वस्त्र उड़ गए हैं, कोई नंगी पड़ी है, किसी के सिर के बाल खुले पड़े हैं, किसी के मुँह से लार बह रही है, किसी का मुँह खुला और दाँत निकले हैं, कोई उलटी कोई सीधी, कोई किसी के ऊपर सिर और कोई किसी के ऊपर पैर रक्खे सब जहाँ की तहाँ मृतवत् पड़ी हैं। यह देख कुमार के चित्त में स्त्रियों से बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। उन्होंने करुणा से ठंढी साँस ली और कहा—"कितने शोक की बात है कि मनुष्य इन स्त्रियों से प्रीति करता है। भला इन राक्षसियों के प्रेम में आनंद कहाँ"। यह कहकर वे वहाँ से उठे, अपने प्रासाद में आए और उन्होंने अपने प्रिय सारथी छंदक को बुलाया। कुमार की आज्ञा पाते ही छंदक उपस्थित हुआ। कुमार ने छंदक से कहा—* "छंदक मेरे प्रस्थान

---

* छंदकाह खलु मा विलंबं हे अश्वराज दद मे अलंकृतं।
सर्वसिद्धि मम रति मंगला-सर्वसिद्धि ध्रुवमेदमेष्यति ॥

का समय आ गया। तुम शीघ्र अश्व तैयार कर ले आओ। मैं अभी बाहर जाऊँगा। समय अच्छा है। इस समय जाने से मेरा सब काम सिद्ध होगा और अवश्य मुझे सब सिद्धियाँ प्राप्त होंगी"। कुमार के इस कुसमय गृहत्याग करने पर छंदक अत्यंत विस्मित हुआ और हाथ जोड़कर बोला—"देव! आप क्यों गृहत्याग करते हैं? आप इस राज-संपत्ति की ओर देखिए। जिस ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये ऋषिगण बड़े बड़े कठिन तप करते हैं, वह आपको स्वभाव से ही प्राप्त है। आप महारानी यशोधरा की ओर देखें। उनकी यौवनावस्था और रूप-लावण्य पर ध्यान दें। आप अपने उस पुत्र का मुख देखें जो अभी उत्पन्न हुआ है और आपका एक मात्र उत्तराधिकारी है। भगवन्! आप राजकुमार हैं। आपको किस बात की कमी है जो आप संसार से विरक्त होकर संन्यास ग्रहण करने पर तुले हुए हैं? जिस भोग-ऐश्वर्य्य के लिये बड़े बड़े ऋषि मुनि लालसा करते हैं, वह आपको सहज में ही भाग्यवश प्राप्त है। हे महाभाग! आपकी अभी अवस्था ही क्या है। आप सुखपूर्वक इस दैवदत्त ऐश्वर्य्य का भोग कीजिए।"

छंदक की यह प्रार्थना सुन सिद्धार्थकुमार ने कहा—

> अपरिमितानंतकल्पा मया छंदक,
> भुक्ता कामानिमां रूपाश्च शब्दाश्च।
> गंधारसास्पर्शता नानाविधा
> दिव्येयो मानुषा नैव तृप्तिरभूत॥

हे छंदक! अपरिमित अनंत कल्प तक मैंने नाना प्रकार के दिव्य और मानुष रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इत्यादि काम-सुखों का भोग किया, पर मुझे तृप्ति नहीं हुई। मनुष्य कभी अपनी कामना को विषय-भोग से तृप्त नहीं कर सकता। कामना दहकती हुई आग है। इसे यदि विषय-भोग के घी से कोई बुझाना चाहे तो यह कभी नहीं बुझेगी, किंतु उलटे अधिक प्रदीप्त होगी। ज्ञानी पुरुष साँप का सिर छोड़ देता है और अशुचि मैले के घट को नहीं छूता। छंदक! काम सब सुखों का नाशक है, यह जानकर काम की ओर मेरी रुचि नहीं होती *। हे छंदक, यह संसार घोर जंगल है, इसमें चारों ओर क्लेश ही क्लेश है। हम लोग मोह और अविद्या के अंधकार में पड़े हुए हैं, जरा, व्याधि और मृत्यु के भय से पीड़ित हैं, जन्म-मरण दुःखरूपी शत्रु हमारे पीछे लगे हैं। मैंने इस संसार के दुःखों को अच्छी तरह अनुभव किया है और प्रतिज्ञा करता हूँ कि—

तदात्मनोत्तीर्य्य इदं भवार्णवं
सवैरदृष्टिग्रहक्लेशराक्षसं।
स्वयं तरित्वा च अनंतकं जगत्
स्थलेऽन्तरिक्षे अजरामरे शिवे।

मैं इस भवार्णव को जिसके साथ वैरदृष्टि ग्रहक्लेश रूप राक्षस लगे हैं, अवश्य पार करूँगा। और मैं केवल अकेला ही पार न

* विवर्जिता सर्पशिरा यथा बुधैर्विगर्हिता मीढघटो यथाशुचिः।
विनाशका: सर्वसुखस्य छंदक ज्ञात्वाहि कामान्न विजायते रतिः।
ललितविस्तर अ० १५।

होऊँगा, किंतु अनंत संसार को उस अंतरचित्थ अजर अमर मोक्ष में स्थापित करूँगा। मैं गृह त्याग अवश्य करूँगा और तेरे सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ—

वज्राशनिपरशुशक्तिशराश्मवर्षं
विद्युत्प्रभानज्वलितं क्वथितं च लोहं।
आदीप्तशैलशिखिरा प्रपतेयुमूर्ध्नि
नोवा अहं पुनर्ज्जनेय गृहाभिलापं।

मेरे सिर पर वज्र भले ही गिरे, बिजली, परशु, शक्ति, शर तथा पत्थर की वृष्टि भले ही हों, बिजली की तरह दहकता लोहा भले ही सिर पर गिरे अथवा दहकता हुआ ज्वालामुखी पर्वत सिर पर भले ही आ पड़े, पर मेरे हृदय में अब फिर गृहाश्रम की अभिलापा नहीं होगी।

जब छंदक ने कुमार की यह घोर प्रतिज्ञा सुनी और देखा कि कुमार समझाने से नहीं मानते और अपने हठ पर अड़े हुए हैं, तब उसे निश्चय हो गया कि अब कुमार अवश्य कपिलवस्तु परित्याग करेंगे। वह कुमार के पास से अश्वशाला की ओर कंठक को लाने के लिये गया। छंदक के जाने पर कुमार पर राग ने आक्रमण किया और वे चुपके चुपके दबे पाँव अंतःपुर में घुसे। अंतःपुर में सब दास दासियाँ जो जहाँ थीं, वह वहीं पड़ी खर्राटे भर रही थीं। सारे घर में निद्रा-देवी का अखिल साम्राज्य था। प्रसूतिका गृह का द्वार, जिसमें गोपा थी, खुला हुआ था। दीपक जलता था, पर सब के सब पड़े सोते थे। वे द्वार पर पहुँचे और बाहर से देखा

तो गोपा घर में अपने पर्य्यंक पर अपने नवजात पुत्र को अपनी छाती पर लिए हुए घोर निद्रा में निमग्न बेसुध पड़ी सो रही है। सिद्धार्थ उसके पर्य्यंक के पास तक गए और समीप था कि वे अपनी प्रिय रानी यशोधरा को जगा उससे अंतिम भेंट कर उसे गृहत्याग की सूचना दें और अपने पुत्र राहुल को एक बार अपनी गोद में ले पुत्र के सुख का अनुभव करें, पर उन्होंने अपने मनोवेग को रोका और वे वहाँ से लौटे। किवाड़ के पास ठहरकर उन्होंने फिर अपने मन में कहा कि "नहीं, ऐसा करना मेरे त्याग में घोर अड़चन उपस्थित करेगा।" इस प्रकार के राग और विराग के झगड़े में वे बहुत देर तक पड़े रहे और अंत को वे उसका जगाना उचित न समझ अंतःपुर से निकले और प्रासाद के द्वार पर आए जहाँ उनका विश्वासपात्र सारथी छंदक कंठक को लिए उन की प्रतीक्षा कर रहा था। सिद्धार्थ कंठक पर सवार हुए और आधी रात के समय सुनसान नगर से होते हुए नगर के पूर्व द्वार से यह कहकर बाहर निकले—

स्थानासनं शयनचंक्रमणं
नकरिष्येहं कपिलवस्तुमुखं।
यावन्न लब्धं वरबोधि मया
अजरामरं पदवरं ह्यमृतं।

---

(८) प्रव्रज्या

उदयति यदि भानुः पश्चिमेदिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्म' पर्वताग्रे शिलायां
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ॥

आधी रात का समय है। सब लोग निद्रा-देवी के वशीभूत पड़े सुख की नींद सो रहे हैं। सिद्धार्थ कुमार अपने घोड़े कंठक पर सवार हो कपिलवस्तु से निकल पूर्व ओर चले जा रहे हैं और उनका विश्वासपात्र दास छंदक उनके घोड़े के पीछे पीछे चुपचाप छाया की भाँति लगा चला जाता है। वे घने जंगलों और सुनसान मैदानों में होते हुए अनेक छोटी छोटी पहाड़ी नदियों और नालों को पार करते रोहिणी के तट पर पहुँचे। उन्होंने रोहिणी को पार किया और वे कौड़िया (कोलिय) राज्य में पहुँचे। कौड़िया राज्य में ही उनकी ससुराल थी, इसलिये वे वहाँ भी न रुके और दिन किसी न किसी तरह कहीं बिताकर वे पावा * के मल्लों के राज्य में पहुँचे। पर यहाँ भी उन्होंने दम मारना अनुचित समझा। यहाँ से वे मैनेय राज्य में गए और कई दिन और रात चलकर वे कपिलवस्तु से छः योजन पर अनामा नदी के किनारे पहुँचे। उन्होंने अनामा नदी को पार किया और वे अपने घोड़े पर से उतर पड़े। यहाँ उन्होंने अपने शरीर से सारे वस्त्रा-

* पावा को अब पडरौना कहते हैं। वह गोरखपुर जिले में है

भूषण उतारे और साधारण दो एक वस्त्र पहन शेष वस्त्राभूषण तथा कंठक को अपने दास छंदक को सौंप उससे कहा—"छंदक! अब तुम इन वस्त्रों और आभूषणों को तथा कंठक को लेकर कपिलवस्तु को लौट जाओ। माता पिता को मेरा सानुनय प्रणाम कहना और उनसे कह देना कि * "आप मेरे ग्रह-त्याग करने की कुछ चिंता न कीजिए; मैं बुद्धत्व लाभ कर फिर कपिलवस्तु में आ कर आपके चरणों के दर्शन करूँगा। उस समय आपका चित्त मेरे धर्मोपदेश को सुन शांत होगा।" छंदक कुमार की यह वातें सुन रोने लगा लगा। उसने कहा—"कुमार मैं आपको कदापि नहीं छोड़ सकता। आप मुझे जो चाहिए कीजिए, पर कपिलवस्तु जाने को न कहिए। मैं आपके विना कपिलवस्तु जाकर क्या करूँगा। यदि मैं आपकी आज्ञा मान कपिलवस्तु को लौट भी जाऊँ तो भी वहाँ लोग मुझे जीता न छोड़ेंगे। वे लोग मुझ पर आपके निकलाने का कलंक लगावेंगे। आप कृपाकर मुझे भी अपने साथ लेते चलिए।" कुमार ने छंदक को वहुत कुछ समझा बुझाकर वस्त्राभूषण और घोड़े के साथ कपिलवस्तु को लौटाया और स्वयं अपने खड्ग से अपनी शिखा काट डाली और आगे की राह ली।

---

* छन्दोक गृहीत्वा कपिलपुरं प्रयाहि
मातापितृणां मम वचनेन पृच्छ।
गतः कुमारो न च पुनः शोचयेथा
बुद्धत्व बोधिपुनरहमागमिष्ये।
धर्मं श्रुणित्वा भविष्यथ शांतचित्तः।

थोड़ी दूर चलकर कुमार के चित्त में फिर भी यह यह आशंका हुई कि यद्यपि मेरे शिखा नहीं है और मैंने राजोचित वस्त्राभूषणों का भी परित्याग कर दिया है, फिर भी जो वस्त्र मेरे शरीर पर हैं वे रेशमी और बहुमूल्य हैं, जिन्हें साधारण मनुष्य नहीं पहन सकता। संभव है कि मुझे कोई इन वस्त्रों में देखकर पूछताछ करे और मेरा पता महाराज शुद्धोदन को पहुँचावे। वे इसी विचार में जा रहे थे कि दूर से उन्हें आगे एक लुब्धक (ठग) देख पड़ा जो साधु की तरह कषाय वस्त्र पहने राह में बैठा हुआ था। कुमार जब लुब्धक * के पास पहुँचे तब उससे बोले—"आइए, हम और आप अपने कपड़े बदल लें।" कुमार की बात सुन लुब्धक ने कहा—"आपका वस्त्र आप को शोभा देता है और मेरा कषाय-वस्त्र मुझे शोभा देता है। मैं वस्त्र-परिवर्तन नहीं करूँगा।" कुमार ने कहा—"यदि आप बदलेंगे नहीं तो मैं आपसे आपका कषाय वस्त्र माँगता हूँ। क्या आप माँगने पर भी न देंगे?" इस प्रकार कुमार ने अपने सारे वस्त्र उतार उस लुब्धक को दे उसके दिए कषाय वस्त्र पहन आगे का रास्ता लिया।

प्रातः काल कपिलवस्तु में जब लोग मोह-निद्रा से जागे तो सिद्धार्थ कुमार को वहाँ न पा चारों ओर उन्हें प्रासाद में ढूँढने लगे। जब वहाँ भी वे न मिले तब लोगों को कंठक और छंदक को न देख विश्वास हो गया कि कुमार गृहत्याग कर कहीं चले गए।

---

* महायान के अर्थ में इसे देवता लिखा है; और कषाय वस्त्र के स्थान पर मृगचर्म लिखा है।

अंतःपुर की सब स्त्रियाँ विह्वल हो विलाप करने लगीं। महारानी प्रलावती, गोमती और राजकुमारी गोपा अपनी छाती और सिर पीटने लगीं। महाराज शुद्धोदन पुत्रशोक में विह्वल हो रोने लगे। चारों ओर ढूँढ़ने के लिये लोग भेजे गए, पर कुमार न मिले और लोग ढूँढ़ ढाँढ़कर विवश हो कपिलवस्तु लौट आए। कई दिन पर छंदक भी कंठक और कुमार के वस्त्राभूषण ले कपिलवस्तु रोता पीटता आया और उसने महाराज शुद्धोदन तथा अन्य राजकुल से कुमार का सँदेसा कहा। सब लोग रोने लगे और फिर एक बार और कुमार के ढूँढ़ने के लिये आदमी भेजे गए, पर कुमार न मिले और न उनका कुछ पता ही चला। अंत को सब लोग कुमार की अंतिम बात की प्रतीक्षा करने पर विवश हो अपने भाग्य को दोष दे दुःखित मन हो हारकर बैठ गए।

उधर कुमार अनामा नदी पर शिखा काट गेरुआ वस्त्र पहन वहाँ से वैशाली नगर की ओर चले और शाक्या ब्राह्मणी के घर पर ठहरे। शाक्या ने कुमार का भोजनादि से उचित सत्कार किया। शाक्या के यहाँ से चल गौतम पद्मा नामक ब्राह्मणी के घर अतिथि रहे और पद्मा के यहाँ से चल वे रेवत ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। रेवत जी ने गौतम का उचित आतिथ्य सत्कार किया। रेवत जी के आश्रम से चलकर वे त्रिमदंडिकपुत्र राजक के घर पर ठहरे और वहाँ अतिथि रहकर आगे बढ़े। इस प्रकार कई दिनों में भैक्ष्य-चर्य्या करते गौतम वैशाली नगर में पहुँचे।

वैशाली नगर में उस समय एक परम विद्वान् पण्डित आराड

कालाम नामक रहता था। उसके आचार्यकुल में तीन सौ ब्रह्मचारी विद्याध्यन करते थे। महात्मा गौतम आराड के ब्रह्मचर्य्याश्रम में गए और उन्होंने आचार्य्य आराड कालाम से ब्रह्मचर्य्याश्रम ग्रहण किया और उससे 'अकिंचनायतन' * धर्म की शिक्षा प्राप्त की। पर इतने से गौतमबुद्ध का संतोष न हुआ। वे अपने मन में कहने लगे—"मैंने वेदों को भी पढ़ा है। मुझ में वीर्य्य और स्मृति भी है। मुझे समाधि की क्रिया भी आती है और मेरे पास प्रज्ञा भी है जिसके प्रभाव से मैं अप्रमत्त होकर विहार कर सकता हूँ। पर क्या इतने मात्र से मनुष्य अपने समस्त क्लेशों को ध्वस्त कर सकता है?" यह विचार गौतम आचार्य्य आराड कालाम के पास जाकर बोले—"आचार्य्य! क्या आपने अब तक धर्म का इतना ही मात्र साक्षात् किया है?" आचार्य्य ने कहा—"हाँ, गौतम मैंने तो इतना ही साक्षात् किया है।" गौतम ने कहा—"इतना तो मैं भी जानता हूँ और मैंने भी साक्षात् किया है।" आचार्य्य यह सुन बहुत प्रसन्न हो बोले—"गौतम! बड़े हर्ष की बात है कि आपने भी उसी धर्म को साक्षात् किया जिसे मैंने किया है। अतः आइए, हम और आप दोनों मिलकर परस्पर प्रेमपूर्वक इन शिष्यों को धर्म की शिक्षा दें।" पर गौतम, जो कुछ और आगे जाने के लिये उत्पन्न हुए थे, ठहरकर ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने पर राजी न हुए और आचार्य्य से बिदा माँग राजगृह की ओर बढ़े।

* संज्ञा और संज्ञी दोनों जिसमें हों, इस प्रकार का ज्ञान अर्थात् कुछ नहीं है।

यह राजगृह नगर जिसे प्राचीन काल में गिरिव्रज कहते थे, पाँच पर्वतों के बीच में बसा था। इसे मगध के महाराज बिंबसार ने बसाया था और उस समय यह मगध की राजधानी थी। इसी नगर के पास रामपुत्र रुद्रक नाम का एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् रहता था जिसकी विद्या और आचरण की प्रशंसा सुन गौतम वैशाली से राजगृह गए थे। यहाँ पहुँचकर वे पांडव पर्वत पर ठहरे और अपना भिक्षापात्र ले एक बार राजगृह में भिक्षाग्रहणार्थ गए। नगर के लोगों ने उनकी अवस्था देखी और उनकी चर्चा महाराज बिंबसार के दरबार में चलाई। बिंबसार इन राजलक्षणयुक्त भिक्षुक को देखने के लिये बहुत उत्सुक हुए और उन्होंने उन्हें अपने राजमहल में भिक्षाग्रहण करने के लिये निमंत्रित किया। गौतम महाराज बिंबसार का निमंत्रण स्वीकार कर राजमहल में गए और भिक्षाग्रहण कर अपने आश्रम पर आए। महाराज बिंबसार रात के समय पर्वत पर आए और गौतम के चरणों की वंदना कर उनसे विनयपूर्वक कहा—"भिक्षो, आपका यह रूप और यह अवस्था भिक्षाग्रहण करने योग्य नहीं है। आप कृपा कर मेरे इस राज्य को ग्रहण कर यह राज्य स्वयं भोग कीजिए। आपकी अवस्था वन वन घूमने की नहीं है।" राजा की इन बातों को सुन गौतमबुद्ध ने कहा—"महाराज ! * आपका कल्याण हो,

* प्रभणति गिरि बोधिसत्वः श्लक्ष्णं, अकुटिलमं मयचो हितानुकंपी,
स्वस्ति धरणीपाल तेऽस्तु नित्यं, न च अहं कामगुणेभिरर्थिकोस्मि,
कामं विषसमा अनंतदोषा, नरकप्रपातनमे ततिर्यग्योनौ,

आपका ऐश्वर्य्य आपके लिये है, मुझे इसका काम नहीं। यह कामना विष के समान है। इसमें अनंत दोष हैं। इसी कामना के वशीभूत हो प्राणी प्रेत-योनि, तिर्य्यक्-योनि ग्रहण करता है और नरक में पड़ता है। विद्वान् लोग इस कामना को अनार्य्ययुष्ट समझ त्याग देते हैं। यह कामभोग क्षणभंगुर है। जैसे वृक्ष के फल झड़ जाते हैं, वा आकाश के बादल फटकर विलीन हो जाते हैं, वायु कभी स्थिर नहीं होती और सदा चला करती है, ठीक उसी प्रकार काम-सुख स्थायी नहीं है। यह समस्त शुभ कर्मों का नाशक है। हे भूपाल! यदि कोई पुरुष समस्त दिव्य और मानुष, ऐहिक और आमुष्मिक सुखों को प्राप्त कर ले तो भी उसकी तृप्ति कभी नहीं हो सकती। कितना ही विद्वान् और ज्ञानवान् क्यों न हो, यदि वह

विद्धुभिर्विगर्हिता चाप्यनार्य्यकामा:, जहिति मया पक्वखेटपिंडम्।
कामद्रुमफला यथा पतंति, यथ इव अभ्रबलाहका व्रजंति।
अध्रुवचपलगामिमारुतं वा, विकरण सर्वशुभस्य वंचनीया:।
काम धरणीपाल! ये च दिव्या, तय अपि मानुष काम ये प्रणीता:।
स कुनर लभेति सर्वकामां, न च सो तृप्ति लभेत भूयस्य:।
काम महिपाल सेवमान, परमनु न विदाति कोटिसंस्कृतस्य।
लवणजल यथा हि पित्वा, भूय तृषु वर्द्धति कामसेवमाने।
ये तु धरणीपाल शांतदांता, आर्य्यानाश्रवधर्मपूर्णसंज्ञा,
प्रज्ञविदुष तृप्त ये सुतृप्ता:, न च पुन कामगणेषु काचित् तृप्ति:।
अपिधरणीपाल पश्य कायं, अध्रुवमसार कुदु:खयंत्रमेतत्।
नवभि व्रणमुखै सदा स्रवंतं, न मम नराधिप! काम छंदरागै:।
अहमपि विपुलान् विजह्यकामान् तथऽपि च स्त्रिसहस्त्रान्दर्शनीयान्।
अनभिरतुभवेषु निर्गतोहं, परमशिवां बरबोधिमाप्तुकाम:।

विषय-भोग का सेवन कर उनसे तृप्ति चाहे तो वह समुद्र के जल से प्यास बुझाने की चेष्टा करता है। ज्यों ज्यों वह विषय-भोग में रत होगा, त्यों त्यों उसकी तृष्णा बढ़ती जायगी। अतः हे महाराज! विषय-भोग से तृप्ति की आशा रखना व्यर्थ है। इससे तृप्ति हो ही नहीं सकती। हाँ, जो पुरुष आर्य्य, आश्रवरहित और धर्मनिष्ठ प्राज्ञ है, उसी को सच्ची तृप्ति प्राप्त है। महाराज! आप अपने शरीर की ओर ध्यानपूर्वक देखिए, यह क्षणभंगुर और दुःख का एक यंत्र मात्र है। इसके नवों द्वारों से मल, मूत्र, श्लेष्मा आदि सदा बहा करते हैं। मुझे तो कामभोग में कोई सुख नहीं दिखाई देता। मेरे घर स्वयं अनेक विपुल ऐश्वर्य्य, सुंदर दर्शनीय स्त्रियाँ तथा अन्य आमोद प्रमोद की सब सामग्रियाँ संपन्न थीं; परंतु अब मैं उन सब को छोड़ परमकल्याणकारी उत्तम निर्वाण पद लाभ करने के लिये घर से निकला हूँ। फिर मैं आपके इस राज्य और ऐश्वर्य्य को ले कर क्या करूँगा?"

गौतम की इन बातों को सुन बिंबसार अत्यंत विस्मित हो अपने मन में लज्जित से हो गए। वे सोचने लगे कि यह कौन पुरुष है जिसने इस प्रकार अपने ऐश्वर्य्य को त्याग निर्वाण की जिज्ञासा के लिये संन्यास ग्रहण किया है। बिंबसार ने कुतूहलवश गौतम से फिर पूछा—"हे भिक्षो! आप कौन हैं? आपकी जन्मभूमि कहाँ है? आपका नाम क्या है? आपके पिता माता का क्या नाम है?" बिंबसार के प्रश्नों को सुन गौतम ने नम्रता से उत्तर दिया—"महाराज, आपने सुना होगा कि शाक्यों का कपिलवस्तु नामक एक राज्य

है। मैं वहीं के महाराज शुद्धोदन का पुत्र हूँ।" यह सुन महाराज बिंबसार ने कहा—

साधु तव सुदृष्टदर्शनं ते
यत्तु तवजन्म वयं पितस्य शिष्याः।
अपि च मम क्षमस्व आशयेन
अयमपि निमंत्रितुकाम वीतरागः॥
यदि त्वय अनुप्राप्त भोति बोधिः
तद म सेति भोति धर्म स्वामिन्।
अपि च मम पुरा सुलब्ध लाभा
मम विजित वससीह यत्स्वयम्भो॥

हे भगवन्! मैं आपके पिता का शिष्य हूँ। मैं आपके दर्शनों से कृतार्थ हुआ। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए। यदि अपको बुद्धत्व प्राप्त हो तो कृपा कर मुझे उसके उपदेश से लाभ पहुँचाइएगा और मैं उसे हर्षपूर्वक स्वीकार करूँगा। आप कृपाकर अवश्य मेरे नगर में पधारिएगा।" यह कह और गौतम की वंदना कर बिंबसार राजगृह चले गए।

प्रातःकाल होने पर गौतम रामपुत्र रुद्रक के आश्रम को गए। रुद्रक के आचार्य्यकुल में सात सौ शिष्य अध्ययन करते थे। रुद्रक अपने ब्रह्मचारियों को " नैव संज्ञा ना संज्ञायतन " सिद्धांत का उपदेश करता था। गौतम ने रुद्रक से कहा—" आचार्य्य, मैं आपका अंतेवासी होकर रहना चाहता हूँ।" रामपुत्र रुद्रक ने गौतम को अपने आश्रम में रखकर " नैव संज्ञा ना संज्ञायतन " सिद्धांत की शिक्षा

देना आरंभ किया। कुछ दिनों तक शिक्षा प्राप्त कर गौतम ने उस सिद्धांत को समझ रामपुत्र रुद्रक से निवेदन किया—"मैंने श्रद्धा, वीर्य्य, स्मृति और समाधि को प्राप्त कर लिया है। क्या अब कुछ और है जिसकी आप मुझे कृपाकर शिक्षा देना चाहते हैं?" रुद्रक ने गौतम के इतने कठिन परिश्रम और शीघ्र श्रद्धादि प्राप्त करने पर विस्मित हो कहा—"गौतम! मैं तो इतना ही जानता था। यदि आपने इनको साक्षात् कर लिया है, तो मेरे पास अब विशेष कुछ नहीं है जिसे मैं आपको सिखाऊँ। यदि आपको मनोनीत हो तो आइए, हम और आप दोनों मिलकर इन विद्यार्थियों को शिक्षा दें।" गौतम ने कहा—"आर्य्य! केवल इतने ही से मेरा काम न चलेगा। मैं तो प्रज्ञा की खोज में घर से निकला हूँ; और चाहे जो हो, उसे अवश्य प्राप्त करूँगा। आपकी श्रद्धादि मात्र से निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ है।"

गौतम और आचार्य्य रुद्रक के इस वार्तालाप को आश्रम के पाँच ब्रह्मचारी * सुन रहे थे। उन लोगों ने अपने मन में कहा—

---

* इन्हीं पांचो ब्रह्मचारियों को पंचभद्रवर्गीय भी कहते हैं। जब गया में गौतमबुद्ध ने अनशन व्रत त्याग दिया, तब ये लोग उनका साथ छोड़ काशी को चले आए थे और सारनाथ में जिसे उस समय ऋषिपतन कहते थे, रहते थे। इन्हीं पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारियों को महात्मा बुद्ध ने पहले पहल ऋषिपतन में धर्मचक्र का उपदेश किया था। ग्रंथांतर का मत है कि इन पांचो को शुद्धोदन ने भेजा था कि ब्रह्मचारी बनकर बुद्धदेव के साथ रहें और उनको यथावसर प्रव्रज्या त्याग गृहाश्रम की ओर प्रवर्तित करने का प्रयत्न करें। यह लोग शाक्यवंशी और कपिलवस्तु के ब्राह्मण-कुमार थे।

"गौतम तू धन्य है! तेरा परिश्रम धन्य है! तूने थोड़े ही दिनों के श्रम में आचार्य्य से उनका सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया। तेरा उद्योग सराहनीय है जो तू अपने उद्देश्य पर अटल है।"

गौतम थोड़े दिन रुद्रक के आश्रम में रह कर वहाँ से प्रस्थान करने पर उद्यत हुए और आचार्य्य की आज्ञा ले वहाँ से चल पड़े। गौतम के चलने पर पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारियों ने उनका पीछा किया और उन लोगों ने गौतम के साथ रहकर प्रज्ञालाभ करने का संकल्प किया। गौतम उन पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारियों के साथ राजगृह से गयशीर्ष पर्वत की ओर, जिसे अब गया कहते हैं, चले।

---

(९) तपश्चर्य्या

सूर्य्यस्य लोके न सहायकृत्यं
चन्द्रस्य सिंहस्य च चक्रवर्तिनः।
बोधौ निषण्णस्य च निश्चितस्य
न बोधिसत्वय सहायकृत्यम्॥

गौतम राजगृह से पंच-भद्रवर्गीय ब्रह्मचारियों के साथ चल कर भैक्ष्यचर्य्या करते हुए कई दिन में गया पहुँचे। उस समय गय-शीर्ष पर्वत पर कोई बड़ा उत्सव मनाया जा रहा था। उत्सव के प्रधान अधिष्ठाता ने उसमें गौतम बुद्ध को भी पंच-भद्रवर्गीय ब्रह्म-चारियों के साथ निमंत्रित किया। गौतम भी निमंत्रण पा उस उत्सव में सम्मिलित हुए और अधिष्ठाता ने भोजन और वस्त्र से उनकी पूजा की। गौतम वहाँ गयशीर्ष पर्वत पर ठहर गए और भैक्ष्यचर्य्या करते हुए वहाँ रहने लगे। उस समय उनके चित्त में नाना प्रकार के साधुओं को देख यह विचार आया कि तीव्र, मृदु और मध्य भेद से साधुओं की तीन कोटियाँ हो सकती हैं। इन साधुओं में कुछ लोग तो ऐसे हैं जो काम-सुख में बार बार निमग्न होते हुए विशुद्धबोधि की प्राप्ति की कामना रखते हैं। उनका प्रयत्न ठीक उसी प्रकार का है जैसे कोई पुरुष गीली अरणी को बार बार जल में भिगोकर उसे मथकर अग्नि निकालना चाहता है। ऐसे लोगों को जिनका चित्त काम-सुख के राग से रंजित है, बोधि प्राप्त होना असंभव है। दूसरे ऐसे लोग हैं जिनका चित्त कभी काम-भोग

में अनुरक्त हो गया था, पर जिन लोगों ने अभ्यास और वैराग्य द्वारा उसे हटाकर योगसाधन का प्रयत्न करना प्रारंभ किया और कर रहे हैं। ऐसे लोगों का प्रयत्न उस पुरुष की नाईं है जो गीली लकड़ी को अरणी से मथकर अग्नि निकालना चाहता है। ऐसे लोग यदि लगकर श्रम करें तो समाधि-सिद्धिपूर्वक प्रज्ञा लाभ कर सकते हैं और उन्हें सुगमता से सफलता प्राप्त हो सकती है। तीसरे वे लोग हैं जिनके चित्त काम-भोग की तृष्णा और रागादि से अभिषिक्त नहीं हैं और जो योगाभ्यास द्वारा प्रज्ञा की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे हैं। इन लोगों का प्रयत्न ठीक उस पुरुष की नाईं है जो सूखे काठ की अरणी से मथकर आग निकालना चाहता है। ऐसे लोग यदि श्रम करें तो रागादि के उन्मूलन होने से वे अवश्य प्रज्ञा लाभ कर सकते हैं।

यह विचार कर उन्होंने सोचा कि सब से पहले कायशुद्धि की आवश्यकता है और कायशुद्धि तप के बिना होना असंवभ है। कायशुद्धि के बिना चित्त की शुद्धि नहीं होती और चित्त की शुद्धि के बिना विशुद्ध प्रज्ञा की प्राप्ति भी असंभव है। वे गया से तपोभूमि की तलाश में चले और उस पर्वत के इधर उधर फिर रहे थे कि निरंजना नदी के किनारे उरुविल्व ग्राम में पहुँचे। वह स्थान निरंजना नदी के किनारे अत्यंत मनोहर और समथल था। वहाँ पर कुछ सुंदर पेड़ भी थे जिन पर लताएँ चढ़ी हुई थीं; और निरंजना का घाट भी स्नानादि के योग्य था और जल शुद्ध तथा वेग-रहित था। वह स्थान गौतम ने सब प्रकार से योगसाधन के

उपयुक्त पाया। उनका चित्त अत्यंत प्रसन्न हुआ। वहाँ वे घोर तपश्चर्य्या करने का संकल्प करके रहने लगे। उन्होंने चांद्रायणादि कृच्छ्र व्रतों को ग्रहण किया और अपने शरीर को व्रतचर्य्या से अत्यंत कृष कर उष्ण काल में पंचाग्नितपन और शीतकाल में नग्न रहकर शीतोष्ण सहन इत्यादि परम दुष्कर तप करते हुए भैक्ष्यचर्य्या का भी परित्याग कर दिया, और वे मिर्च, तंडुल वा तिल आदि पर, जो उन्हें विना माँगे वहाँ * मिल जाते थे, रहने लगे। जाड़े के दिनों में वे अपने श्वास प्रश्वास का निरोध कर प्राणों को इतना पीड़ित करते थे कि उनके शरीर से पसीने की धारा बहने लगती थी। उन्होंने जब अपने नासारंध्र और मुख-विवर को बंद कर प्राणों की गति का निरोध किया और जब प्राणों के निकलने के प्रधान मार्ग बंद हो गए, तब उन्होंने कानों के मार्ग से निकलने की चेष्टा की। इस प्रकार जब वायु के प्रपीड़न से उनके कानों में तुमुल शब्द होने लगे, तब उन्होंने अपने कानों को भी बंद कर लिया। उन्होंने प्राणवायु को बलपूर्वक ग्रहण कर ब्रह्मांड में रोका और उसके गतिनिरोध से स्फाणक नामक ध्यान की भूमि में प्रवेश किया। इस प्रकार जाड़े, गरमी, वर्षा आदि ऋतुओं में नग्न, निराहार और अपरिच्छद रहकर छः वर्ष तक उन्होंने घोर

---

*ललितविस्तर में लिखा है कि बलगुप्ता, प्रिया, सुप्रिया, विजयसेना, अति मुक्तकमला, सुंदरी, उत्पलविलसिका, जटिलिका और सुजाता नाम की कन्याएं गौतम को कभी कभी मिर्च, चावल और तिल आदि दे जाती थीं और वे उन्हीं को खाकर तप करते थे।

तप का अनुष्ठान किया। समाधि-अवस्था में उनका शरीर मृतवत् वा पाषाणमूर्तिवत् हो गया।

> शुष्कमांसरुधिरचर्मस्नाय्वस्थिकाश्च अवशिष्टाः।
> उदरं च पृष्टिवंशे विनिविश्यते वर्तिता यथा वेणी।

मांस और रक्त सूख गए, केवल चमड़ा, नसें और हड्डियाँ रह गईं। पेट पृष्टिवंश में सिमटकर चोटी की तरह बल खा गया।

जब इस प्रकार घोर अनशन व्रत करने से गौतम अत्यंत कृश और बलहीन हो गए, तब उन्हें यह अनुभव हुआ कि केवल शरीर को कष्ट देने से समाधि की सिद्धि नहीं हो सकती। जो पुरुष स्वयं अशक्त है, वह परम बलवान् मन को कैसे वशीभूत कर सकता है। गीता में भगवान् ने कहा है—

> नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकांतमनश्नतः।
> न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
> युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
> युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

हे अर्जुन! योग की सिद्धि न अत्यंत भोजन करनेवाले ही को होती है और न नितांत अन्न जल त्यागकर अनशन व्रत करनेवाले ही को होती है। जो सदा अधिक सोया करता है और जो बहुत जागता है, वे दोनों योग के अधिकारी नहीं हैं। योग का अधिकारी वही पुरुष है जिसके आहार-विहार नियमित हैं, जो कर्म में युक्त चेष्टा करता और जो मात्रानुसार सोता और जागता है। ऐसे ही लोगों को दुःखों का नाश करनेवाला योग सिद्ध होता है।

गौतम का चित्त अनशन व्रत से हट गया और उन्होंने मिताहारी होकर समाधि प्राप्त करने का संकल्प किया। पर वे करते तो क्या करते। उनके शरीर में इतनी शक्ति कहाँ थी कि वे अपने स्थान से हिल डोल सकते ? उनके शरीर पर वस्त्र भी न थे, वे नितांत अपरिच्छद नग्न थे। यह सोच उन्हें पहले अपने परिच्छद की चिंता पड़ी। निदान वे अपने स्थान से किसी प्रकार उठे, पर उठते ही गिर पड़े और अपने पैरों के बल चलने में असमर्थ हुए। फिर वे बड़ी कठिनाई से हाथों के सहारे खिसकते हुए बड़ी देर में पास ही के एक श्मशान में गए। उस श्मशान में उन्हें किसी मुरदे का एक फटा पुराना टाट का टुकड़ा मिला, जिसे लोगों ने उसे जलाने के समय वहाँ फेंक दिया था। उसे उन्होंने उठा तो लिया, पर अब उसे धोने की चिंता पड़ी। थोड़ी देर वहाँ विश्राम कर उन्होंने फिर वहाँ से खिसकना प्रारंभ किया और धीरे धीरे कई जगह दम लेते हुए वे निरंजना नदी के किनारे पहुँचे। दैवयोग से वह घाट भी कुछ ऊँचा था। वे उतरने में कई जगह गिर भी पड़े। पर वे उन सब कठिनाइयों को झेलते हुए नदी में उतरे और येन केन प्रकारेण उन्होंने उस टाट के टुकड़े को एक पत्थर पर पछाड़ कर साफ किया। वहाँ उन्होंने निरंजना के विमल जल में स्नान कर उस टाट के टुकड़े की कोपीन लगाई और वहाँ से वे गाँव में भिक्षा के लिये गए।

गौतम जब गाँव में गए, तब दैवयोग से जिस द्वार पर उन्होंने भिक्षा की प्रार्थना की, वह उन्हीं कन्याओं में से एक के घर का द्वार

था, जो निरंजना के किनारे उन्हें चावल आदि दे जाती थीं। उस कन्या ने गौतम को मूँग का जूस बनाकर दिया और उनकी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। और क्रमशः जब गौतम के शरीर में कुछ बल का संचार हुआ, तब उन्हें खिचड़ी आदि खिलाकर इस योग्य किया कि वे अपने पैरों के बल खड़े हो सकने लगे। इस प्रकार वे अपना विगत स्वास्थ्य लाभ कर निरंजना नदी के किनारे भैक्ष्यचर्य्या करते हुए विचरने लगे।

गौतम के स्थान त्याग कर चले जाने पर पंचभद्रवर्गीय ब्रह्मचारी जो उनके साथ गिरिव्रज से आए थे और वहीं भिक्षा करते हुए उनके पास रहते थे, गौतम को भीरु जान उनका साथ छोड़ काशी चलने को उद्यत हुए। उन लोगों ने अपने मन में कहा कि गौतम अत्यंत समाधि-भीरु है, वह तप की कठिनाइयों को सहन नहीं कर सकता। फिर उसके लिये समाधि-सिद्धि और प्रज्ञालाभ होना नितांत दुस्तर क्या, असंभव है। यह सोच उन लोगों ने गौतम को वहाँ अकेला छोड़ काशी को प्रस्थान किया।

थोड़े दिन भैक्ष्यचर्य्या करने से जब गौतम का स्वास्थ्य ठीक हो गया तब वे फिर मिताहारपूर्वक समाधि सिद्ध करने की चिंता करने लगे। वे योगाभ्यास के लिये शास्त्रोचित पवित्र स्थान ढूँढ़ने लगे। एक दिन उन्होंने निरंजना नदी को पार किया तो उन्हें नदी के पास ही एक सुंदर रम्य स्थान दिखाई पड़ा। वहाँ एक उत्तम अश्वत्थ का वृक्ष था * जिसे देख गौतम का मन अत्यंत उत्साहित

* बुद्धघोषादि का मत है कि उस गांव का नाम सेनग्राम था और

हुआ। उस दिन वे उसी वृक्ष के नीचे सो रहे और दूसरे दिन अपने योगसाधन की सामग्री इकट्ठी करने के लिये गाँव में गए। वहाँ उन्होंने सुजाता नामक एक स्त्री के घर भिक्षा के लिये प्रार्थना की। दैवयोग से उस दिन उसके घर खीर पकी हुई थी। सुजाता ने

अश्वत्थ वृक्ष को लोग अजपाल कहते थे। बुद्धदेव प्रातःकाल जब सेनग्राम के पास पहुँचे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि अभी सूर्य्योदय हुआ है, भिक्षा का काल नहीं है, अतः वे अजपाल वृक्ष के नीचे बैठ गए। सेनग्राम के एक पुरुष की, जिसका नाम महासेन था, सुजाता नाम की एक कन्या थी। उस कन्या ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि मेरा विवाह योग्य पति से होगा और मुझे संतान-लाभ होगा तो मैं अजपाल वृक्ष के नीचे वासुदेव को पायस अर्पण करूंगी। दैवयोग से सुजाता का मनोरथ पूर्ण हुआ और वह अपने पिता के घर आई थी और उस दिन अजपाल के नीचे पायस चढ़ानेवाली थी। उसके पिता के यहां सहस्रों गौएं थीं और उसने उनमें से एक सहस्र गौओं का दूध लेकर दो सौ गौओं को, फिर उनके दूध को चालीस को और अंत को चालीस का दूध आठ अच्छी गौओं को पिला उनका विशुद्ध दूध लेकर पायस बनाया था और प्रातःकाल ही अपनी दासी पूर्णा को अजपाल में सफाई करने के लिये भेजा था। पूर्णा जब अजपाल के नीचे आई तब वहां उसने महात्मा गौतम सिद्धार्थकुमार को बैठा हुआ पाया। पूर्णा उन्हें वहां देख अत्यंत आश्चर्यान्वित हुई। उसने समझा कि भक्तवत्सल वासुदेव स्वयं पायस-भक्षण के लिये अजपाल के नीचे आ विराजे हैं। उसने यह समाचार सुजाता से जाकर कहा। सुजाता कुतूहलवश अपनी दासी पूर्णा के साथ अजपाल वृक्ष तले पहुंची और महात्मा गौतम को वृक्ष के नीचे देख उसने उन्हें बड़ी भक्ति से पायस समर्पण किया। गौतम के पास पात्र नहीं था, अतः उन्होंने पायस का थाल सुजाता के हाथ से ले लिया। उस पायस के गौतम ने उनचास ग्रास बनाए, और खाकर उस थाल को निरंजना नदी में फेंक दिया।

उन्हें एक कटोरा भर खीर भिक्षा में दी । गौतम उसे ले निरंजना के किनारे आए और उन्होंने एक सुंदर घाट पर स्नान किया और वस्त्र बदलकर उस खीर के आँवले बराबर उनचास ग्रास बनाए। गौतम उन ग्रासों को खा वहाँ विश्राम कर सायंकाल के समय बोधिवृक्ष की ओर चले। मार्ग में उन्हें एक श्रोत्रिय ब्राह्मण मिला जो कुशा का बोझ सिर पर लिए सामने से उनकी ओर आ रहा था। श्रोत्रिय ने गौतम को देख कुश के आठ पूले उन्हें अर्पण किए और गौतम ने उन्हें सहर्ष स्वीकार किया। वे कुश के पूलों को लिए हुए बोधिवृक्ष के नीचे आए और वृक्ष की जड़ के चबूतरे पर वृक्ष के मूल के पूर्व ओर कुश बिछाकर वहाँ आसन मारकर यह संकल्प कर पूर्वाभिमुख बैठे—

इहासने शुष्यतु वा शरीरं
त्वगस्थिमांसं विलयं प्रयाति ।
अप्राप्य प्रज्ञां बहुजन्मदुर्लभां
नैवासनात्कायमिदं चलिष्यति ॥

(१०) मार-विजय

त्यक्त्वा येनससागरा वसुमती रत्नान्यथानेकशः
प्रासादाश्च गवाक्षहर्म्यिकवरा युग्माश्च यानानि च ।
व्योमालंकृत पुष्पदाम रुचिरा उद्यानकूपाः समा
हस्तापादशिरोत्तमांगनयनः सो बोधिमंडे स्थितः ।

जब गौतम बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे आसन लगाकर समाधि में बैठे, तब उस समय उनके चित्त में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए और उनकी समाधि में अनेक प्रकार की बाधाएँ पड़ीं। योग-शास्त्र के देखने से ज्ञात होता है कि योगी को योगानुष्ठान में अनेक प्रकार की आपत्तियाँ पड़ती हैं जिन्हें योग शास्त्र-वालों ने अंतराय* के नाम से लिखा है। इन आपत्तियों को सहन कर और धैर्य्य धारण कर समाधि सिद्ध करना और उसके अवांतर संप्रज्ञात असंप्रज्ञात आदि भेदों को चंचलता-रहित हो साक्षात् कर निर्बीज समाधि तक पहुँचना ही साधक का परम कर्तव्य माना गया है। मन को एकाग्र करना साधारण काम नहीं है। गीता में कहा है—

असंशय महाबाहो मनोदुर्निग्रहः चलम् ।
अभ्यासेनतु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते

---

* व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वा-नवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः । यो० १।३०

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्यो वाप्तुमुपायतः॥

हे अर्जुन! इसमें संशय नहीं है कि मन का एकाग्र करना अत्यंत कठिन है; फिर भी वह अभ्यास और वैराग्य से रोका जा सकता है। मेरी मति है कि जिस योगी का मन वश में नहीं है, योग उसके लिये दुष्प्राप्य है। पर जिसका मन वशीभूत है, यदि वह प्रयत्न करे तो प्राप्त कर सकता है।

योग-शास्त्र में योगियों के चार * भेद माने गए हैं (१) प्राथमिक वा प्रथमकल्पिक जिसने केवल अभ्यास किया है और

---

* स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणंपुनरनिष्टप्रसंगात् ।-३।५१ चत्वारः खलु अमी योगिनः प्रथमकल्पिकः, मधुभूमिकः, प्रज्ञाज्योतिः। अतिक्रांतभावनीयश्चेति। तत्राभ्यासी प्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः। ऋतंभरप्रज्ञो द्वितीयः। भूतेन्द्रियजयी तृतीयः। सर्वेषु भावितेषु भावनीयेषु कृतरक्षाबंधः कृतकर्तव्यसाधनादिमांश्चतुर्थः। यस्त्वतिक्रांतभावनीयस्तस्य चित्तप्रतिसर्ग एकोऽर्थः। सप्तविधोऽस्य प्रांतभूमिप्रज्ञाः। तत्रमधुमतींभूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्वशुद्धिमनुपश्यंतः स्थानैरुपनिमंत्रयंते भो इहास्यतामिह रम्यतां, कमनीयोऽयंभोगः, कमनीयेयं कन्या, रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते, वैहायसमिदं यानं; अमीकल्पद्रुमाः, पुण्या मंदाकिनी, सिद्धा महर्षयः उत्तमा अनुकूला अप्सरसः, दिव्य श्रोत्रचक्षुषी, वज्रोपमः कायः, स्वगुणैः सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मता, प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरस्थानं देवानां प्रियमिति। एवमभिधानः संगदोषान्भावयेत्, घोरेषु संसारांगारेषु पच्यमानेन मया जननमरणांधकारे विपरिवर्तमानेन कथंचिदासादितः क्लेशतिमिरविनाशी योगप्रदीपः तस्यचैते तृष्णायोनयो विषयमृगतृष्णाया वंचितस्तस्यैव पुनः प्रदीप्तस्य संसाराग्नेरात्मानमिंधनीकुर्य्यामिति। स्वस्ति वः स्वप्नोपमेभ्यः कृपणजनप्रार्थनीयेभ्यो विषयेभ्य इत्येवं

जिसकी ज्योति प्रवृत्तमात्र हो, (२) ऋतंभरप्रज्ञ वा मधुभूमिक जिसने ऋतंभर नाम की प्रज्ञा, जो सवीज समाधि की चतुर्थ निर्विचार अवस्था में प्राप्त होती है, प्राप्त कर ली हो, (३) प्रज्ञा-ज्योति वा भूतेंद्रियजयी अर्थात् जिसने संयमादि से भूतेंद्रियों को जीत लिया हो और (४) अतिक्रांत भावनीय जिसने अपनी समस्त भावित और भावना करने योग्य भावनाओं को रक्षावंध कर अपना कर्तव्य कर लिया हो और अपने सब साधनों को संपन्न कर लिया हो। इन चारों प्रकार के योगियो में स्थानीय देवगण, दूसरे प्रकार के योगी के पास, जब वह मधुभूमि में पहुँचता है, आकर उसे अनेक प्रकार के भोग-ऐश्वर्य्य आदि की प्रलोभना दिखाते हैं और उसे भ्रष्ट करने की चेष्टा करते हैं। उस समय यदि योगी उनकी प्रलोभनाओं में न पड़ा तो वह निर्वीज समाधि प्राप्त कर कैवल्य पद को पहुँच जाता है; अन्यथा वह फिर जन्म मरण के क्लेश में फँसकर दुःख में पड़ता है।

इससे इस बात का अनुमान होता है कि योग की समाधि में जो अड़चनें पड़ती हैं, उनमें कामना वा इच्छा सब से प्रबल बाधक है; और यदि कोई पुरुष कामना को अतिक्रमण कर ले जाय तो वह

निश्चितमतिः समाधिं भावयेत्। संगमकृत्वा स्मयमपि न कुर्यात् एवमहं देवानामपि प्रार्थनीय' इति, स्मयादयं सुस्थितंमन्यतया मृत्युना केशेषुगृहीतमिवात्मानं न भावयिष्यति, तथाच अस्य छिद्रान्तरप्रेक्षी नित्यं यत्नोपचर्यः प्रमादो लब्धविवरः क्लेशानुत्तंभयिष्यति, ततः पुनरनिष्टप्रसंगः, एवमस्य संगस्मयावकुर्वतो भावितोऽर्थो दृढीभविष्यति, भावनीयश्चार्थोऽभिमुखीभविष्यतीति।

समाधिसिद्ध हो सकता है। सचमुच कामना एक ऐसा मनोवेग है जो मन को सदा चंचल किए रहता है। इसी को योगशास्त्र में स्थानिक देव, बौद्ध ग्रंथों में मार, पुराणों में इंद्र, जंद में अहमन तथा सेमिटिक ग्रंथों में शैतान कहा गया है।

बौद्ध काव्यों में कहीं * विभ्रम, हर्ष और दर्प नामक मार के तीन पुत्र तथा रति, प्रीति और तृष्णा नाम की तीन कन्याएँ, कहीं काम, रति, क्षुत्पिपासा, तृष्णा, इच्छा, भय, विचिकित्सा, क्रोध, मक्ष, लोभ, श्लोक, संस्कार, मिथ्यालब्धयश, अभिमान, ईर्ष्या इत्यादि इसकी सेनाएँ † मानी गई हैं और इनका राजा मार नामक कहा गया है। काव्यों में मार के साथ गौतम का युद्ध बड़ी रोचकता के साथ लिखा गया है। यद्यपि मार ने गौतम को कई बार झुकाना चाहा और उन्हें विषयभोग के अभिमुख करने के लिये अनेक प्रयत्न किए, पर गौतम उसके चक्कर में न फँसे। इसने उनका पीछा कपिलवस्तु में ही किया था और उनकी प्रव्रज्या में अनेक प्रकार के विघ्न

---

* तस्यात्मजाविभ्रमहर्षदर्पास्तिस्त्रोरतिप्रीतितृषश्चकन्या।

बुद्धचरितकाव्य।

† कामस्ते प्रथमासेना, द्वितीया ते रतिस्तथा।
तृतीयाक्षुत्पिपासा ते तृष्णा सेना चतुर्थिका॥
पंचमी स्त्यानमिद्धं ते, भयं षष्ठी निरुच्यते।
सप्तमी विचिकित्सा ते क्रोध म्रक्षौतथाष्टमी॥
लोभश्लोकौ च संस्कारो मिथ्यालब्धं च यद्यशः।
आत्मानं यश्चउत्कर्षेद्यश्च पर्ध्वंसयेत्परान्।
एषा नमुचिः ते सेना कृष्णबन्धोः प्रतापवान्॥

ललितविस्तर।

डालने चाहे थे। फिर जब उन्होंने उरुविल्व में छः वर्ष तक घोर तप किया, तब भी उनसे कई बार उसने कहा कि "तू क्यों शरीर सुखाता है? तू दुर्बल हो गया है; अब तू मर जायगा। उठ, तू अपने घर जा। तू राजपुत्र है। तुझे राज्य-ऐश्वर्य भोगना चाहिए, न कि देह सुखाना।" पर गौतम ने उसका तिरस्कार ही किया। अंत में जब गौतम बोधिमूल में अटल समाधि लगाने के लिये कुशासन पर आसन लगाकर बैठे, तब मार को भय हुआ कि अब मेरी गति का अवरोध हो जायगा। उसने अपने पुत्रों और पुत्रियों की सम्मति ली और सब ने उसे मना किया; पर दैववश उसने किसी की न सुनी और अपनी सारी सेना को एकत्र किया और वह अपने समस्त पुत्रों और पुत्रियों को संग ले हाथ में पुष्पधनु ग्रहण कर पाँच बाण लिए बोधिमूल के पास आया। पहले उसने रति-प्रीति आदि को विघ्न डालने के लिये गौतम के पास भेजा। उन लोगों ने बारी बारी से उनके पास आकर उन्हें फुसलाना चाहा; और जब गौतम उनके फुसलाने में न आए, तब मार ने अपनी सेना से अनेक प्रकार के विघ्न डलवाने चाहे। वे लोग नाना प्रकार के भयानक रौद्र रूप धारण कर उन्हें भयभीत करते थे। वायु तेज़ चली, पानी बरसा, बिजली चमकी, तड़पी और गिरी, पेड़ उखड़ गए, तूफान आया, सब कुछ भौतिक उत्पात हुए, पर इससे न तो बोधि वृक्ष का एक पत्ता ही हिला और न गौतम ही अपने आसन से डिगे। अब मार ने एक और माया रची। उसने बहुतेरी अप्सराओं को भेजा जो अत्यंत रूपयौवन-संपन्न होने पर भी उनके चारों ओर नंगी

काम-केला करती हुई फिरने लगीं। पर गौतम ने उनकी ओर दृष्टि उठाकर भी न देखा। अंत में जब मार थक गया, तब वह उनके सामने स्वयं उपस्थित हुआ और उन्हें अनेक प्रकार के लौकिक आमोद-प्रमोद की प्रलोभना देने लगा; पर गौतम ने उसकी एक भी न सुनी। फिर उसने गौतम पर ताने मारना आरंभ किया। उस ने कहा—"गौतम, तूने राज्य-सुख अवश्य भोग किया है, तू मोक्ष का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता। तूने पुण्य भी संचय नहीं किया है और न तूने राजा होकर यज्ञ ही किया है। किस बल पर तू मोक्ष की कामना कर मुमुक्षु बन बोधिमूल के नीच बक-ध्यान लगा कर बैठा है ?" इस प्रकार मार की बातें सुन गौतम ने अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्र, दिशा, प्रदिशा आदि देवताओं को साक्षी देते हुए पृथिवी पर टंकार मारी और कहा—

यज्ञो मया यष्टस्त्वमिहात्र साक्षी,
निरर्गलः पूर्वभवेऽनवद्यः।
तवेह साक्षी न तु कश्चिदस्ति
किंचित्प्रलापेन पराजितस्त्वम्
इयं मही सर्वजगत्प्रतिष्ठा
अपक्षपाता सचराचरे समा
इयं प्रमाणं मम नास्ति मे मृषा
साक्षी त्वमस्मिन्मम संप्रयच्छतु॥

मैंने यज्ञ किया, इसके लिये ये सब साक्षी हैं। पर निरर्गल और अनेक जन्मों से अनवद्य, तेरा कोई साक्षी नहीं है। यह पृथिवी

जिस पर सारे जगत् की स्थिति है और जो पक्षपात-रहित सब चराचर को समान दृष्टि से देखती है, मेरी साक्षी है। भगवति वसुंधरे! मैं सत्य कहता हूँ, इसमें तू साक्षी दे।

गौतम का पृथ्वी को टंकारना था कि पृथिवी से एक तुमुल शब्द हुआ और मार यह कहता हुआ निस्तेज पृथिवी पर गिर पड़ा—

दुःखं भयं व्यसनशोकविनाशनं च,
धिक्कारशब्दमवमानगतं च दैन्यम्।
प्राप्तोस्मि अद्य अपराध्य सुशुद्धसत्वे
अश्रुत्व वाक्य मधुरं हितमात्मजानाम्.

(११) अभिसंबोधन

मारं विजित्य सबलं स हि पुरुषसिंहो
ध्यानसुखमभिमुखमभितोऽपि शास्ता।
त्रैविद्यता दशबलेन यदा हि प्राप्ता
संकम्पिता दशदिशा बहुक्षेत्रकोट्यः॥

धीर गौतम अनेक प्रकार के उत्तेजन मिलने पर भी काम के वश में न आए और उन्होंने उसके जड़-मूल को नाश कर दिया। काम के नष्ट होने से उनका मन एकाग्र हो गया। सब चंचलता जाती रही। उन्होंने प्रबल दुर्दम मन को अपने दीर्घ-कालिक निरंतर अभ्यास से दमन कर काम के नाश से उत्पन्न अचल और ध्रुव वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध किया। चित्त के एकाग्र होने पर उनमें एक अलौकिक आनंद का संचार हो गया और उनके लिये समाधि * का मार्ग साफ हो गया। उनके राग द्वेष आदि नष्ट हो गए, उनका चित्त शुद्ध, विमल, चंचलतारहित और शांत हो गया।

चित्त की वृत्ति को एकाग्र कर उन्होंने समाधि लगाई और वे सुगमता से संप्रज्ञात समाधि (सवितर्क ध्यान) में मग्न हुए।

---

* बौद्धों के हीनयान के ग्रन्थों में समाधि को ध्यान कहा है और सवितर्क, अवितर्क, निष्प्रीतिक और अदुःखासुखध्यान उसके भेद माने गए हैं, जिन्हें पतंजलि ने योग शास्त्र में संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात, सबीज और निर्बीज समाधि कहा है। महायान के ग्रन्थों में समाधि की अनेक भूमियां मानी गई हैं।

संप्रज्ञात * समाधि से वितर्क, विचार, आनंद और स्मिता आदि का क्रमशः निरोध कर निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार आदि समाधियों में होते होते हुए वे असंप्रज्ञात † समाधि में पहुँचे। सद्-वृत्ति का ग्रहण और असद्वृत्ति का त्यागकर उन्होंने संप्रज्ञात समाधि (सवितर्कध्यान) लाभ किया। फिर क्रमशः सद् और असद् उभय वृत्तियों के विरोध को उपशम कर वे असंप्रज्ञात अवस्था को पहुँचे। फिर प्रीति और अप्रीति दोनों की उपेक्षा करते हुए उन्होंने ‡ सबीज समाधि वा निष्प्रीतक ध्यान लाभ किया। फिर क्रमशः दुःख और सुख का उपशमन कर वे विशुद्ध निर्बीज समाधि में पहुँचे और उन्हें अदुःखासुखध्यान का आनंद प्राप्त हुआ।

आषाढ़ की पूर्णिमा की पवित्र रात्रि संसार में सदा आदर की दृष्टि से देखी जाने योग्य है। यह वही रात है जिस को उरुविल्व ग्राम के पास महाबोधि वृक्ष के नीचे निर्बीज समाधि में मग्न कुमार सिद्धार्थ को बोधि प्राप्त हुई थी, जिसके कारण वे गौतम से

---

* वितर्कविचारानंदास्मितानुगमात् संप्रज्ञातः । १ । १७ क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः । तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः । स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का । एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ४० - ४३

† विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः [असंप्रवृतिः] १ । १८

‡ सूक्ष्मविषयत्वं चालिंगपर्यवसानम् । ता एव सबीजः समाधिः । निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः । ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा । श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् । तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबंधी । तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः । ४४ । ५०

गौतम बुद्ध कहलाए। कहते हैं कि चंद्रमा में अमृत रहता है और वह अपनी किरणों से उसे बरसाता है। पर यह बात कवियों की कविता और पुराणों की गाथा में ही थी। किसी ने कभी आकाश से अमृत की धारा बरसते न देखी और न सुनी ही। पर यह आषाढ़ी पूर्णिमा सचमुच एक ऐसी रात थी जिस में गौतम बुद्ध के ऊपर बोधि रूपी अमृत की वृष्टि हुई। वे बुद्ध हुए और अपने इस लब्ध ज्ञानामृत से सहस्रों प्यासी आत्माओं को तृप्त करके उनको शांति प्रदान की।

उस रात के पहले पहर में गौतम को दिव्य चक्षु उत्पन्न हुए और उन्होंने सम्यक् दृष्टि लाभ की। इन दिव्य चक्षुओं के प्राप्त होने से उन्होंने ऊँचे नीचे, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सुगत, दुर्गत सब प्राणियों को देखा कि बहुतेरे लोगों को मानसिक, वाचिक और कायिक पापों से आर्य्य धर्म-विरोधी मिथ्या दृष्टि, मिथ्या कर्म और मिथ्या धर्म प्राप्त हुआ है जिससे वे मरण से अपाय, दुर्गति, विनिपात आदि नरकों में पड़कर दुःख भोग रहे हैं। और अनेक लोगों को मानसिक, वाचिक और कायिक सुचरित से सम्यग्दृष्टि, सम्यक्कर्म और सम्यक्धर्म प्राप्त हुआ है जिनसे वे सुगति स्वर्ग लोक में सुख भोग रहे हैं। उन्हें सब प्राणी इस संसार के प्रबल कर्मबंधन में जकड़े हुए दिखाई पड़े। इसे बौद्ध लोग दिव्य-चक्षुज्ञान-दर्शन-विद्या कहते हैं। इससे गौतम की आँखों के सामने से तम का आवरण दूर हो गया और उन्हें आलोक ज्ञान प्राप्त हुआ। अब दूसरा पहर आया। इस समय उन्हें पूर्वानुस्मृतिज्ञान का दर्शन प्राप्त हुआ।

वे इस ज्ञान की प्राप्ति से जातिस्मर हो गए और सैकड़ों सहस्रों जन्मों की बातें उन्हें स्मरण हुईं कि मैं अमुक जन्म में अमुक योनि को प्राप्त हुआ, इत्यादि। फिर रात के तीसरे पहर में उन्हें आश्रवज्ञानदर्शन नामक तीसरी विद्या प्राप्त हुई। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर उन्हें समस्त संसार के प्राणी अविद्यांधकार-ग्रस्त दिखाई पड़े। वे अपने मन में कहने लगे कि संसार में लोग उत्पन्न होते हैं, जीते हैं, मरते हैं, फिर ऊँची नीची गति को प्राप्त होते हैं; पर अज्ञानवश इस बड़े दुःख के स्कंध का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है*।

अब वे इन दुःखों का निदान सोचने लगे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जरा मरण दुःखादि का कारण जन्म है। यदि जन्म न होता तो न दुःख होता और न जरा-मरण होता। पर जन्म क्यों होता है ? इसका हेतु क्या है ? सोचने से उन्हें मालूम हुआ कि जन्म का कारण धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप है, जिसे भव कहते हैं। क्योंकि इन्हीं के वशीभूत होकर प्राणियों को भोग के लिये जन्म ग्रहण करना पड़ता है। पर भव कहाँ से आता है ? विचार करके उन्होंने निश्चय किया कि भव की उत्पत्ति उपादान अर्थात् कर्म से होती है। यदि कोई शुभाशुभ कर्म न करे तो न उसे धर्म होगा और न अधर्म; और जब धर्म और अधर्मरूप भव ही नहीं, तब जन्म क्यों और कहाँ से होगा। फिर वे उपादान का कारण अन्वेषण करने

---

* प्रज्ञा प्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति ॥

लगे तो उन्होंने निश्चित किया कि उपादान का हेतु तृष्णा है। तृष्णा ही में फँसकर मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है। तृष्णा विना कोई किसी कर्म में प्रवृत्त होता ही नहीं। अब तृष्णा क्यों होती है ? इसका उत्पादक कौन है ? जब इस पर वे विचार करने लगे, तब उन्हें साक्षात् हुआ कि वेदना ही इस तृष्णा का कारण है, जिसे सुख दुःख आदि कहते हैं। पर वेदना की उत्पत्ति का हेतु उन्हें अन्वेषण करने से स्पर्श * ही प्रतीत हुआ। क्योंकि यदि स्पर्श, गंध, रूपादि न हों तो सुख दुःख आदि वेदनाएँ कहाँ से हों ? पर स्पर्शादि कहाँ से होते हैं ? स्पर्शादि का कारण षड़ायतन अर्थात् स्पर्शादि के प्रधान आधारभूत श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन ही हैं॥ इस षड़ायतन का कारण विचारपूर्वक नामरूप, फिर नामरूप का कारण विज्ञान, विज्ञान का कारण संस्कार और संस्कार का कारण अविद्या उन्होंने उत्तरोत्तर निर्धारित किया। इस प्रकार गौतम ने दुःख, समुदय, निरोधगामिनि और प्रतिपद नामक चार आर्य्य सत्यों का साक्षात्कार किया और उनको समस्त संसार कार्य्य-कारण के सूत्र में बद्ध ओतप्रोत दिखलाई देने लगा। उस समय प्रातःकाल जब उषा का आगम हुआ और पूर्व दिशा में भगवान् भुवनभास्कर निकलने की तैयारी करने लगे, तब उन्हें सम्यक्संबोधि प्राप्त हुई और उनका अंतःकरण बोधिज्ञान से परिपूर्ण हो गया। वे बुद्ध हुए। उस समय वे ब्रह्मानंद में निमग्न हो गए और यह उदानगान करने लगे—

---

* बौद्ध दर्शनों में इंद्रियों के विषयों को स्पर्श कहते हैं।

अनेक जाति संसारं संधाविसमनिब्बसं।
गहकारकं गवेसंतो दुःखजाति पुनःपुनः।
गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासका भग्गा गहकूटं विसंकितं।
विसंखारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा। *

---

* मैं अनेक जन्म तक संसार में जन्म के दुःखों को सहता हुआ इस घर के बनानेवाले को ढूंढता रहा, पर वह मुझे न मिला। हे घर के बनानेवाले! मैंने आज तुझे देखा। अब तू फिर दूसरा घर न बना सकेगा। मैंने तो तेरे सब सामान तोड़ ताड़ डाले। तेरा गृहकूट ध्वंस कर दिया। मेरा चित्त अब संस्कारहीन हो गया और तृष्णा का भी क्षय हो गया।

(१२) सप्तसप्ताह

करतलसदृशो भूत् सुस्थिता मेदनीयं
विकसितशतपत्राश्चोद्गता रश्मिमन्तः।
अमरशतसहस्रा ओनमी बोधिमंडे
इमु प्रथम निमित्तं सिंहनादे हि दृष्टं॥

बोधिज्ञान प्राप्त होने पर महात्मा बुद्धदेव सात सप्ताह तक बोधिद्रुम के आस पास भिन्न भिन्न स्थानों में एक एक सप्ताह तक विचरते रहे। पहले सप्ताह में तो वे बोधिद्रुम के नीचे उसी स्थान पर रहे जहाँ उनको बोधिज्ञान लाभ हुआ था, और वहाँ बैठकर वे द्वादश निदान * के प्रतीत्य समुत्पाद-तत्व का विचार करते रहे। ललितविस्तर का मत है कि इस सप्ताह में उन्होंने प्रीत्याहारव्यूह नामक समाधि का अनुष्ठान किया †। दूसरे सप्ताह में वे बोधि पर्य्यंक

---

* द्वादश निदान ये हैं:—अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरादिदुःख, स्कंध। यथा—अविद्याप्रत्ययाः, संस्काराः संस्कारप्रत्ययं विज्ञानं, विज्ञानप्रत्ययं नामरूप, नामरूपप्रत्ययं षडायतनं, षडायतनप्रत्ययः स्पर्शः, स्पर्शप्रत्यया वेदना, वेदनाप्रत्यया तृष्णा, तृष्णाप्रत्ययमुपादानं, मुपादानप्रत्ययो भवो, भवप्रत्ययाज्जातिः जातिप्रत्यया जरामरणशोक परिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासा सम्भवन्त्येव केवलस्य महतो दुःखस्कंधस्य समुदयो भवति समुदयः।

† ललितविस्तर का मत है कि महात्मा बुद्धदेव दूसरे सप्ताह में चंक्रमण करते रहे और तीसरे सप्ताह में वे अनिमेष होकर बोधिमंड का निरीक्षण करते बैठे रहे। यथा—'अभिसंबुद्ध बोधिस्तथागतः प्रथमे सप्ताहे

से उठकर बोधिवृक्ष के पूर्वोत्तर कोण में १४ धनु पर जिसे अभिनिमेष स्थान लिखा है, जाकर बोधि वृक्ष की ओर मुँह करके एक सप्ताह तक अनिमेष होकर बैठे रहे। तीसरे सप्ताह में अभिनिमेष स्थान से पाँच धनु बोधि वृक्ष की ओर चलकर पूर्व से उत्तर और उत्तर से पूर्व को एक सप्ताह तक चंक्रमण * करते रहे। चौथे दिन वे चंक्रमण से रत्नागृह वा रत्नाघर को गए। यह स्थान बोधि द्रुम से उत्तर पश्चिम में १० धनु पर है। यहाँ महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन बुद्धों के उपदेश-क्रम पर विचार किया। ललितविस्तर का मत है कि चौथे सप्ताह में वे रत्नाघर से चलकर अजपाल अश्वत्थ के नीचे गए। यह अजपाल अश्वत्थ महाबोधि वृक्ष से पूर्व दिशा में ३२ धनु पर है। यहीं महात्मा बुद्धदेव ने बोधि-प्राप्ति के लिये बोधिद्रुम के नीचे आने के पूर्व वैशाख पूर्णिमा के प्रातःकाल के समय सुजाता के हाथ से भिक्षा ली थी। कहते हैं कि यहाँ पर फिर मार की पुत्रियों ने † आकर उन्हें डिगाने का प्रयत्न आरंभ

तत्रैवासने स्यात् इहऽमयानुत्तरा सम्यक संबोधिरभिसंबुद्धा इहमयाऽनवराग्रस्य जातिजरामरणादुःखस्यान्तः कृत इति। द्वितीये सप्ताहे तथागतो दीर्घचंक्रमणं चंक्रमतेस्म। त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोक धातुमुपरृह्म। तृतीये सप्ताहे तथागतोऽनिमिष बोधिमंडमीक्षतेस्म। इहाऽमयाऽनुत्तरा सम्यक् संबोधिरभिसंबुद्धा अनवराग्रस्य जरामरणादुःखस्यांतः, कृत। इति २४ अध्याय।

* बौद्ध ग्रंथों में टहलने को चंक्रमण कहते हैं।

† ललितविस्तर का मत है मार ने चौथे सप्ताह में जब वे दीर्घचंक्रमण कर रहे थे, आकर विघ्न करना प्रारंभ किया और अपनी कन्याओं रति, अरति, और तृष्णा को भेजा, और जब वे उन्हें वश नहीं कर सकीं तब वे मार के पास जाकर बोलीं----

किया; पर गौतम बुद्ध का मन विचलित न हुआ। जब वे अपना सब कल बल कर थक गईं, तब गौतम ने हँसते हुए कहा—

यस्स जितं नावजीयति जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेसथ ?
यस्स जालिनी विसत्तिका तण्हा नत्थि कुहिम्हि नेत वे।
तं बुद्धमनंतगोचरं अपदं केन पदेन नेसथ ?।

जिसके द्वारा जीते जाने पर फिर दूसरों के जीतने को नहीं रहते और जिसके जीतने पर फिर कोई पीछे जीतने को रह ही नहीं जाता, उस अनंतगोचर अपद बुद्ध को हे तृष्णा आदि, तुम किस पद वा उद्योग से खींच सकती हो ? जिसको विशक्ति के जाल में फँसानेवाली तृष्णा फिर कहीं नहीं ले जा सकती, उस अनंतगोचर अपद बुद्ध को हे तृष्णा आदि, तुम किस पद को ले जा सकती हो ?

यह बात सुनकर मार की कन्याएँ हारकर जहाँ से आई थीं, वहीं चली गईं। यहीं पर उनके पास आकर एक ब्राह्मण ने यह प्रश्न किया कि "गौतम ! ब्राह्मण किसे कहते हैं ?" वह ब्राह्मण जाति-अभिमान में इतना चूर रहता था कि ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरे वर्ण के मनुष्यों से सिवाय हूँ हूँ करने के स्पष्ट शब्दों में

सत्यं वदसि मत्तात न रागेण स नीयते,
विषयं मे ह्यतिक्रांतस्तस्माच्छोचामहे भृशम्।
वीक्ष्येत यदसौ रूपं यदस्माभिर्विनिर्मितम्,
गौतमस्य विनाशार्थं ततोऽस्य हृदयं स्फुटेत्।
तत्साधुनस्तातेदं जराजर्जरशरीरमंतर्धापय।
यह सुन मार ने कहा—नाहं पश्यामि तं लोके पुरुषं सचराचरे।

संभाषण तक नहीं करता था। इसी लिये लोगों ने उसका नाम 'हुंहुंक' रख दिया था। गौतम ने उसके पूछने पर कहा—

यो ब्राह्मणो वा कितपापधम्मो
निहुंहुँको निक्कसावो यवत्तो
धम्मेन सो (ब्राह्मणो) ब्रह्मवादं वदेय्य।
यस्सुस्सदानत्थि कुहिंचि लोकेति।

जो ब्राह्मण पाप-धर्म नहीं करता, किसी को हूँ हूँ नहीं करता और कषायरहित यतात्मा है, जो वेदांतज्ञ है और जिसने ब्रह्मचर्य्य पालन किया है, जिसको इस लोक में कोई विचलित करनेवाला नहीं है, वही ब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य का उपदेश कर सकता है।

छठे सप्ताह में वह अजपाल से चलकर दक्षिण ओर मुचलिंद ह्रद पर गए *। यह मुचलिंदह्रद महाबोधि वृक्ष से दक्षिणपूर्व के कोण में इक्यावन धनु पर था। यहाँ एक छोटा सा तालाब था जिसके किनारे मुचकुंद का एक पेड़ था। पाली में मुचकुंद को मुचलिंद कहते हैं और इसी लिये इस ह्रद का नाम मुचलिंद-ह्रद वा मुचलिंद-द्रह था। यहाँ सात दिन तक मूसलाधार पानी बरसा और

---

* ललितविस्तर का मत है कि पांचवें सप्ताह में गौतम बुद्ध मुचलिंद नागराज के भवन में रहे और इस सप्ताह में वहां बड़ा पानी बरसा और नागराज ने स्वयं आकर अपने फन की छाया उनके सिर पर कर के उन्हें पानी से बचाया।

बुद्धस्यपयोऽत्राधिष्ठानं अकृत्वाऽत्र तुमन्यथा।
शीघ्रमस्मान्निवेदयन्तमित्यर्थं स्वयमृतं मुनेः।
सर्वं पौराणिकं कार्यं करिष्यति यथाभवत्।

कहते हैं कि इस सप्ताह में एक नाग, जिसे काल नाग वा शेषनाग कहते हैं, दह से निकलकर गौतम के ऊपर अपने सहस्र फणों से छाया किए रहा और उसने वृष्टि से उनकी रक्षा की। यहाँ गौतम के मुँह से यह उदान निकला—

> सुखो विवेकस्तुष्टस्य श्रुतधर्मस्य पश्यतः।
> अव्याबध्यं सुखं लोके प्राणिभूतस्य संयमः॥
> सुखा विरागता लोके पापानां समतिक्रमः।
> अस्मिन्मानुष्यविषये एतद्धै परमं सुखम्॥

विवेक-तुष्ट और श्रुतधर्म को यह देखकर सुख है कि लोक में अव्याबाध सुख प्राणिमात्र का संयम है। विरागता सुख है, पापों से बचना सुख है, इस मनुष्य-लोक में यही परम सुख है।

पानी बंद होने पर वे सातवें सप्ताह में मुचलिंद-दह से पश्चिम राजायतन नामक स्थान पर गए। राजायतन* बोधि वृक्ष से ४० धनु पर दक्षिण दिशा में था। यहाँ गौतम बुद्ध एक सप्ताह तक रहे। सप्ताह के अंत में देवताओं ने उन्हें दिव्य हरीतकी, नाग-लता और अनवतप्तहृद का जल दिया। यहाँ गौतम बुद्ध जल से हाथ मुँह धो नाग-लता से दंतधावन कर दिव्य हरीतकी खाकर बैठे थे कि इसी बीच में उत्कल देशवासी त्रपुष और भल्लिक नामक दो

---

* ललितविस्तर में राजायतन का नाम नारायण लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि उन लोगों की गाड़ियों के पहिए महात्मा बुद्धदेव के तेज से भूमि में धंसने लगे। गाड़ियों के पहिए धंसने पर वे घबराए हुए नारायण के नीचे पहुँचे।

वैश्य, जो पाँच गाड़ी शालि लिए उत्कल से आ रहे थे, पहुँचे। कहते हैं कि यहाँ पहुँचने पर उनकी गाड़ियों के चक्के कीचड़ में फँस गए। निदान उन्हें अपनी गाड़ियों को निकालने की चिंता पड़ी। वे इधर उधर उद्विग्न फिर रहे थे कि वे राजायतन वृक्ष के नीचे पहुँचे और वहाँ महात्मा गौतम बुद्ध को बैठे देख उन्हें प्रणाम कर उन्होंने उनके सामने सत्तू और मधु के मोदक अर्पण किए। महात्मा बुद्धदेव ने उनके अर्पित मोदक को सहर्ष अपने भिक्षापात्र * में ले लिया और उनको भक्षण कर उन्हें अपना क्लेश देकर यह आशीर्वाद दिया—

दिशां स्वस्तिकरं दिव्यं मांगल्यं त्वार्थसाधकम्।
अर्थो वः सम्मताः सर्वे भवत्वाशु प्रदक्षिणा।

---

* बौद्ध ग्रंथों में लिखा है कि उस समय गौतम बुद्ध को चातुर्महाराज वैश्रवण, धृतराष्ट्र, विरूढ़क और विरूपाक्ष ने चार पात्र दिए थे जो गया के पर्वत के काले पत्थर के बने थे। महात्मा गौतम बुद्ध ने उन पात्रों को एक दूसरे पर धर के दबा दिया था और वे एक दूसरे में समाविष्ट होकर एक हो गए थे।

(१३) काशी को प्रस्थान

संबलं निहत्य मारं बोधिः प्राप्तो हिताय लोकस्य।

वाराणसीमुपगतो धर्मचक्रप्रवर्तनाय ॥

त्रपुष और भल्लक नामक वैश्यों के दिए हुए मोदकों को खा और उन्हें अपना केश दे विदाकर गौतम राजायतन वृक्ष-मूल से उठे और अजपाल वृक्ष के नीचे आए। यहाँ आसन लगा बैठ कर वे सोचने लगे कि मैंने अनेक जन्म तपश्चर्य्या करके इस अपूर्व विशुद्ध बोधिज्ञान को प्राप्त किया है। बड़ी कठिनाई से इस संसार-रूपी पहेली का गूढ़तत्व मेरी समझ में आया है। यह तत्व अत्यंत दुर्बोध और सूक्ष्म है। संसारी लोग राग द्वेष मद मत्सर में ऐसे लिप्त हैं कि उन्हें संसार के तत्व पर विचार करने का अवकाश ही नहीं है। वे इस क्षणिक आमोद प्रमोद में ओतप्रोत हो रहे हैं। यदि मैं इन संसारी लोगों के सामने द्वादश निदान की व्याख्या करूँ तो ये लोग उसे समझ नहीं सकते। संसार में अधिकारी पुरुष का अभाव सा हो रहा है। वासना के क्षय होने ही पर मनुष्य मोक्ष का अकिकारी वा मुमुक्षु होता है और ऐसे ही लोग इस तत्व ज्ञान को समझ सकते हैं और निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। राग द्वेप मोह मत्सर आदि से युक्त संसारी लोग अनधिकारी हैं। वे मेरे नवानु-भूत ज्ञान को नहीं समझ सकते; और ऐसे लोगों को इसका उप-देश करना भी व्यर्थ ही है। अब क्या करूँ? मैं इस ज्ञान के उप-देश के लिये अधिकारी कहाँ से पाऊँ? संसार के लोग तो मोह के

मद में उन्मत्त पड़े हैं, उनकी आँखों पर परदा पड़ा है। वे अपने हित की बात नहीं समझते। उनकी दशा ठीक उस कुत्ते की नाईं है जो बैठा हुआ सूखी हड्डी चबाता है और हड्डी की रगड़ से अपने गलफड़ों से निकले हुए रक्त के स्वाद को हड्डी का स्वाद समझ अपनी तृप्ति मानता है। इनका दुःख देखकर तो मेरा कलेजा फटता है। पर यदि मैं उन्हें उनकी अवस्था समझाने जाऊँ तो वे मेरी बात सुनने के लिये तैयार नहीं हैं। बड़ी ही गूढ़ और चक्करदार समस्या है। क्या यह बोधि-ज्ञान, जिसे मैंने इतने परिश्रम से प्राप्त किया है, मेरे साथ ही जायगा और यहीं इसका अंत हो जायगा ? पर किया क्या जाता, अधिकारी व्यक्तियों का उस समय सर्वथा अभाव ही अभाव था। पंडितगण कर्मकांड के जाल में फँसे हुए थे और इतर जनों का अध्यात्म की ओर कुछ ध्यान नहीं था। दोनों कोटियों में उन्हें अनधिकारी ही अनधिकारी देख पड़ते थे। इसी सोच में वे पड़े थे कि अचानक उन्हें आचार्य्य रुद्रक का ध्यान आया। स्मरण आते ही उनका अंतःकरण प्रेम से गद्गद हो गया। उन्होंने अपने मन में कहा—"अच्छा चलो, मैं अपने इस नवाविष्कृत बोधि-ज्ञान को अपने आचार्य्य रुद्रक के सामने, जिनसे मैंने अध्यात्म विद्या अध्ययन की है, गुरुदक्षिणा रूप में समर्पण करूँ। रुद्रक एक वयोवृद्ध संयमी पुरुष हैं। उनका अंतःकरण योगानुष्ठान से विमल हो गया है। उनके राग द्वेष मोहादिक बंधन शिथिल पड़ गए हैं। उनकी बुद्धि शुद्ध और परिष्कृत है। अवश्य वे इस बोधिज्ञान के अधिकारी हैं।" वे यह निश्चय कर अजपाल से चलना ही चाहते थे

कि उनको यह समाचार मिला कि आचार्य्य रुद्रक का परलोकवास हो गया और अब वे इस संसार में नहीं हैं। यह जानकर महात्मा बुद्धदेव को बड़ा शोक हुआ। वे अपने मन में कहने लगे-"हा! आचार्य्य रुद्रक! शोक है कि आप इस संसार में नहीं हैं। नहीं तो आज आप हमारे इस नवीन साक्षात्कृत ज्ञान को सुन कितने प्रसन्न होते।" थोड़ी देर आचार्य्य रुद्रक के शोक से संतप्त हो कर वे अपने मन में यह विचार करने लगे कि यदि उत्तम अधिकारी नहीं हैं, तो चलो किसी मध्यम अधिकारी को ही यह ज्ञान दें जिससे यह ज्ञान मेरे बाद संसार में लोगों के कल्याण करने के लिये रह तो जाय। बड़े सोच विचार के बाद उन्होंने आराड कालाम को मध्यम अधिकारी जान उसके पास चलकर उसे अपने धर्म का संदेश सुनाने के लिये राजगृह की ओर जाने का विचार किया। वे उठकर राजगृह का मार्ग लिया ही चाहते थे कि उन्हें यह समाचार मिला कि अराड कालाम भी इस संसार में नहीं हैं। अब तो गौतम को चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगा। उन्हें नैराश्य हो गया और वे बड़ी चिंता में निमग्न हुए। वे सोचने लगे कि—"क्या मैं अकेला इस बोधिज्ञान का सुख भोगूँ? ऐसा करने से मुझ में और इतर जनों में क्या भेद रह जायगा? क्या अकेले किसी सुख को ऐसी अवस्था में भोगना जब कि मेरे अन्य भाई दुःख-सागर में निमग्न हैं, स्वार्थ नहीं है? भावी संतान को जब यह मालूम होगा कि सिद्धार्थ ने अश्रुतपूर्व विज्ञान लाभ किया और उसने किसी दूसरे को वह ज्ञान नहीं दिया, तो वे मुझे क्या कहेंगे? अब क्या करूँ, अधिकारी कहाँ से लाऊँ?

हाय ! उत्तम और मध्यम अधिकारी जो थे, वे चल बसे। यदि मैं ज्ञान दूँ तो किसे दूँ ? शास्त्रों में अनधिकारी को ज्ञान का उपदेश करने का निषेध है और यह ठीक भी है। जिस प्रकार ऊसर में बोया हुआ बीज निष्फल होता है, वैसे ही अनधिकारी को ज्ञान का उपदेश करना भी निरर्थक होता है। यही नहीं, उल्टे अनर्थकारी भी होता है। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? रोगियों को अपने रोग की खबर नहीं। कोढ़ी अपने कोढ़ को ही आरोग्य का चिह्न समझ रहे हैं। हाय, पाप ने मनुष्यों की आत्मा को कहाँ तक कलुषित कर डाला है ! क्या करूँ, किस तरह मनुष्यों की आँखों से परदा हटाऊँ कि वे सत्य धर्म को देख सकें ?"

वे इसी उधेड़-बुन में पड़े थे कि उन्हें अचानक पंचभद्रवर्गीय भिक्षुओं का स्मरण आया जो उन्हें वहाँ छोड़ काशी की ओर चले गए थे। उनका स्मरण आते ही एक बार उन्हें फिर आशा बँधी। उन्होंने अपने मन में कहा कि अच्छा, यदि उत्तम और मध्यम अधिकारी नहीं मिलते हैं तो अधम अधिकारी ही सही। चलो, उन्हीं को इस अपूर्व ज्ञान का उपदेश करें। उनकी आत्मा अवश्य अन्यों की आत्मा से शुद्ध है। उनके संस्कार अच्छे हैं। चाहे वे निकृष्ट कोटि के ही सही, अधिकारी तो हैं ! उनसे बढ़कर मुझे इस विज्ञान के दान के लिये इस संसार में दूसरे पात्र मिलने कठिन हैं। यह सोच वे अपने मन में काशी चलकर उन पंचभद्रवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश करने का दृढ़ संकल्प कर अपने आसन से उठे और भिक्षा-पात्र ले काशी की ओर चलते हुए।

गौतम बुद्ध अजपाल से उठकर काशी की ओर जा रहे थे। अभी थोड़ी दूर गए थे कि मार्ग में उन्हें आजीवक * संप्रदाय का उपक नामक एक मनुष्य मिला। यह आजीवक मार्ग में सामने से आ रहा था। मार्ग में गौतम को दक्षिण से अपने सन्मुख आते हुए देख उनकी आनन्दमयी मूर्ति का दर्शन कर वह अत्यंत विस्मित हुआ। उनका ब्रह्मानंद में मग्न रूप उसके अंतःकरण में अंकित हो गया। पास पहुँचने पर उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा— "भगवन्! आप के मुख की आकृति शांत, प्रसन्न और आनंदपूर्ण देख पड़ती है, जिससे मालूम होता है कि आप ब्रह्मनिष्ठ हैं। कृपा-पूर्वक मुझे यह बतलाइए कि आपने किस गुरु के मुख से इस अलौकिक ब्रह्मज्ञान की शिक्षा ग्रहण की है।" इस पर महात्मा बुद्धदेव ने हँसकर आजीवक को उत्तर दिया—

सब्बाभिभू सब्बविदो हमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनुप्पलित्तो।
सब्बंजयो तनक्खयो विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्य॥

हे आजीवक! मैंने सब कुछ स्वयं अनुभव किया है और जाना है। मैं सब धर्मों से अलिप्त हूँ, मैंने सब को जीत लिया है, मेरी वासनाएँ जिनसे शरीर ग्रहण करना पड़ता है, क्षीण हो गई हैं और मैं जीवनमुक्त हो गया हूँ। मैंने ये सब बातें स्वयं जानी हैं, मैं किसे बताऊँ जिससे मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ।

* यह संप्रदाय वैष्णव धर्म का पूर्वरूप था।

आजीवक ने महात्मा गौतम बुद्ध के इस वचन को सुनकर कहा कि—"यह संभव है, पर भगवन्! यह तो बताइए कि आप कहाँ जा रहे हैं।" आजीवक के प्रश्न पर गौतम बुद्ध ने कहा—

वाराणसीं गमिष्यामि गत्वा वै काशिकां पुरीं।
धर्मचक्रं प्रवर्तिष्ये लोकेस्वप्रतिवर्तितम्॥

अर्थात् मैं काशी जाता हूँ और वहाँ जाकर मैं धर्मचक्र का प्रचार करूँगा। यह वह धर्मचक्र होगा जिसे कोई फिर उलट नहीं सकता।

आजीवक तो उनकी यह बात सुन दक्षिण को चला गया और महात्मा गौतम बुद्ध गया में आए। गया में वे नागराज सुदर्शन के अतिथि रहे। नागराज ने उनकी पूजा अन्न-वस्त्र से की और वे रात भर वहाँ रहकर प्रातःकाल काशी को रवाना हुए। दूसरे दिन वे रोहितवस्तु में, तीसरे दिन अनाल नामक गाँव में और चौथे दिन सारथिपुर में ठहरे। उन स्थानों के लोगों ने उनका भिक्षा-प्रदान से किया। सारथिपुर से चलकर वे गंगा जी के पर पहुँचे। वर्षा के कारण गंगा जी बढ़ी हुई थीं। वहाँ मल्लाह उनसे उतरवाई माँगी, पर उनके पास था ही क्या जो वे उसे निदान मल्लाह ने उन्हें उतारने से इन्कार किया। दृढ़व्रत गंगा को बिना नाव के ही पारकर काशी में पहुँचे और भिक्षा कर वे काशी से ऋषिपतन के जंगल की ओर चले।

सोयं दृढ़प्रतिज्ञो वाराणसीमुपगतो मृगदावम्।
चक्रं ह्यनुत्तरमसौप्रवर्तयिताह्यदसुतःश्रीमान्॥

---

(१३) धर्म-चक्र-प्रवर्तन

वाचाय ब्रह्मरुतकिन्नरगर्जिताय
अंगैः सहस्रनियुतेभि समुद्गताय।
बहुकल्पकोटिसदसत्यसुभाविताय
कौंडिन्यमालपति शाक्यमुनिः स्वयंभू ॥

काशी नगर में भिक्षा ले भोजन कर गौतम ने वरुणा नदी पार की और फिर वे ऋषिपतन जंगल के मृगदाव नामक प्रदेश में, जहाँ कौंडिन्य, वप्र, भद्रिय, महानाम और अश्वजित् नामक पंच-भद्रवर्गीय भिक्षु घोर तप करते हुए रहते थे, पहुँचे। ये पंचवर्गीय भिक्षु गौतम को गया में, जब उन्होंने अनशन व्रत त्यागा था, छोड़ कर चले आए थे। उन्हें गौतम से एक प्रकार का नैराश्य हो गया था। उन लोगों ने उन्हें भीरु समझा था और उनका अनुमान था कि गौतम अब योग-भ्रष्ट हो गया। अब उसे बोधि-ज्ञान कभी प्राप्त न होगा।

गौतम को काशी से अपने आश्रम की ओर आते देख पंच-भद्रवर्गीयों को अत्यंत आश्चर्य हुआ और वे लोग उनसे उपेक्षा करने लगे और परस्पर कहने लगे कि गौतम तो अब भिक्षा खा खा के मोटा हो गया है, वह यहाँ कहाँ आ रहा है ? जब गौतम उनके आश्रम में पहुँचे, तब उन लोगों ने उनका अर्घपाद्यादि से सत्कार कर आसन दिया। उन लोगों ने गौतम से कहा—"कहो गौतम ! अब इधर कैसे तुमने फेरा किया ?" गौतम ने कहा—

"भिक्षुगण! मैंने बोधि-ज्ञान प्राप्त कर लिया और मैं अब तुम लोगों को उसका उपदेश करने के लिये यहाँ आया हूँ।"

गौतम की बात सुन वे लोग उनकी हँसी उड़ाने लगे और उनसे उपेक्षा करने लगे। पर गौतम ने उनसे कई बार कहा कि—"भिक्षु-गण! तुम लोग विश्वास करो, मैंने बोधि-ज्ञान प्राप्त किया है और मैं तुम्हें उपदेश करने के ही लिये यहाँ आया हूँ। मैंने संसार के निदान को जान लिया और अब मैं जीवनमुक्त तथा विगत-शोक हूँ।" उनकी इस प्रकार की दृढ़तापूर्ण वाणी सुन कौंडिन्य, जो उन सब में वयोवृद्ध था, उनके उपदेश सुनने को उत्कंठित हुआ। उसने अपने साथियों से कहा—"भिक्षुगण! बिना सुने तुम लोग यह कैसे कह सकते हो कि गौतम को ज्ञान लाभ नहीं हुआ? जब वह इस दृढ़ता से कहता है तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसका उपदेश सुनें और यदि ग्रहण करने योग्य हो तो उसे ग्रहण करें।"

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना।

जब सायंकाल हुआ तो सब लोग आश्रम में बैठकर गौतम का उपदेश सुनने लगे। गौतम ने कहा—

*"हे भिक्षुओ संन्यासी वा परिव्राजक को दो अंतों का सेवन न करना चाहिए। वे दोनों अंत कौन हैं? पहला काम-विषय-

---

* एवं मे सुतं--एक समयं भगवा वाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये तत्र खो भगवा पंचवग्गीये भिक्खु आमंतेसि---

वासना में सुख के लिये अनुयोग करना। यह अंत अत्यंत हीन, ग्राम्य, अध्यात्म मार्ग से पृथक् करनेवाला, अनार्य्य और अनर्थ-संहित है। दूसरे शरीर को क्लेश देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्य्य और अनर्थसंहित है। हे भिक्षुओ! तथागत अर्थात् मैंने इन दोनों अंतों को त्याग कर मध्यमा प्रतिपदा वा मार्ग को जाना है। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षु देनेवाली और ज्ञानप्रदायिनी है। इससे उपशम, अभिज्ञान, संबोधन और निर्वाण प्राप्त होता है।

द्वे मे भिक्खवे अन्ता पव्वजितेन न सेवितव्वा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थ-संहितो यो चायं अत्त किलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो। एते खो भिक्खवे उभो अंते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खु करणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।

कतमा च सा भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसंबुद्धा चक्खुकरणी, ञाणकरणी, उपसमाय, अभिञ्ञाय, संबोधाय निब्बानाय संवत्तति? अयमेव अरियो अट्ठंगिको मग्गो। सेय्यथीदं--सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मंतो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो भिक्खवे मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञा संबोधाय, निब्बानाय संवत्तति।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरियसच्चं। जातिपि दुक्खं,जरापि दुक्खो ब्याधिपि दुक्खो, मरणंपि दुक्खो, अप्पियेहिसंपयोगो दुक्खो, पियेहिविप्प-योगो दुक्खो, यंपिच्छं न लभंति तंपि दुक्खं, संखित्तेन पंचीपादानक्ख-न्धोपि दुक्खं।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खसमुदयं अरियसच्चं। यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी। सेय्यथीदं कामतण्हा, विभवतण्हा।

हे भिक्षुगण! वह कौन सी मध्यमा प्रतिपदा है जिसे तथागत ने साक्षात् किया है और जो चक्षुकरणी और ज्ञानकरणी तथा उपशम, अभिज्ञा से बोध और निर्माण की ओर ले जानेवाली है? वह यही आर्य्य अष्टांगिक मार्ग है। वह यह है-सम्यक्कर्मांत, सम्य-

---

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधं अरियसच्चं। यो तस्सायेव तण्हाय असेसविरागं, निरोधो, चागो, पटिनिस्सग्गो, मुत्ति, अनालयो।

इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं। अयमेव अरियसच्चं अट्ठंगिको मग्गो। सेय्यथीदं सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मंतो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।

इदं दुक्खं अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खं अरियसच्चं परिञ्ञेय्यन्ति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि,।

इदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि तं खो पनिदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं पहातब्बंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उपदादि, विज्जा उपदादि, आलोको उपदादि।

इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चंसच्छिकातब्बंति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि।

ग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वाचा, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि। हे भिक्षुओ! यही मध्यमा-प्रतिपदा है जिसे तथागत ने साक्षात् किया है। यह चक्षुकरणी और ज्ञानकरणी है और यही मनुष्य को उपशम, अभिज्ञा, संबोध और निर्वाण तक पहुँचानेवाली है।

हे भिक्षुओ! पहला आर्य्य-सत्य दुःख है। जाति अर्थात् जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि दुःख है, मरण वा मृत्यु दुःख है, अप्रिय का मिलना दुःख है, प्रिय का बिछुड़ना दुःख है,

---

इदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चंति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेधम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं भावेतब्बंति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उदपादि, ञाणं उदपादि, पञ्ञा उदपादि, विज्जा उदपादि, आलोको उदपादि। तं खो पनिदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं भावितंति मे भिक्खवे पुब्बेसु अननुस्सुतेसु धम्मेसु, चक्खुं उपदादि, ञाणं उदपादि पञ्ञा उपदादि, विज्जा उपदादि, आलोको उपदादि।

याव किवंच मे भिक्खवे इमेसु चतुस्सु अरियसच्चेसु एवं तिपरिवट्टं द्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सनं न सुविसुद्धं अहोसि नेव तावाहं भिक्खवे सदेवकेलोके समारके सस्समणब्राह्मणीया पजया सदेवमनुस्साय अनुत्तरं सम्मा-संबोधि अभिसंबुद्धोति पच्चञ्ञासि। यतो च खो मे भिक्खवे इमेसु चतुस्सु अरियसच्चेसु एवं तिपरिवत्तितं द्वाद्वादसाकारं यथाभूतं ञाणदस्सनं सुविसुद्धं अहोसि। अथाहं भिक्खवे सदेवके समारके सस्समणब्राह्मणीया पजया सदेव-मनुस्साया अनुत्तरं सम्मासंबोधिं अभिसंबुद्धोति पच्चञ्ञासि। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि अकोपा मे भिक्खवे चितो विमुत्ति। अयं मे अंतिमा जाति नत्थि मे पुनब्भवोति।

जिसके लिये इच्छा की जाय और वह न मिले तो वह भी दुःख है, संक्षेप में पंचोपादान स्कंध ही दुःख है।

हे भिक्षुगण ! दुःखसमुदय नामक दूसरा आर्य-सत्य यह तृष्णा है जो पुनर्भव का हेतु है और नंदिराग के साथ उत्पन्न हुई है और उन उन विषयों में अभिनंदन करनेवाली है। जैसे—कामतृष्णा, भव-तृष्णा, विभवतृष्णा।

हे भिक्षुगण ! तीसरा आर्य्य-सत्य दुःखनिरोध नामक है। यह उस तृष्णा से अशेष अर्थात् पूर्ण वैराग्य-निरोध, प्रतिसर्ग मुक्त और अनालय है।

हे भिक्षुगण ! चौथा आर्य्य-सत्य निरोधगामिनी प्रतिपदा है। इसी आर्य्य सत्य को अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। वे अष्टांग ये हैं—सम्यक्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यक्वाचा, सम्यक्कर्मांत, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति और सम्यक्समाधि।

हे भिक्षुगण ! यह दुःख नामक (पहला) आर्य्य सत्य पूर्व धर्मों में सुना नहीं गया था। इसने मुझ में चक्षु उत्पन्न किया, ज्ञान उत्पन्न किया, प्रज्ञा उत्पन्न की, विद्या उत्पन्न की और आलोक उत्पन्न किया।

हे भिक्षुओ ! यह दुःख नामक आर्य्य-सत्य परिज्ञेय है। यह पूर्व धर्मों में सुना नहीं गया। इसने मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न किया। हे भिक्षुओ ! मैंने इस दुःख नामक आर्य्य-सत्य को जान लिया। यह पहले धर्मों में सुना नहीं गया था। इसने मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न किए।

हे भिक्षुओ ! यह दुःखसमुदय नामक दूसरा आर्य्य-सत्य पूर्व धर्मों में कभी नहीं सुना गया था ।। इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । हे भिक्षुओ ! यह दुःखसमुदाय नामक आर्य्य-सत्य त्यागने योग्य है । यह पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । हे भिक्षुओ ! इस दुःखसमुदय नामक आर्य्य-सत्य को मैंने त्याग दिया । यह पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए ।

हे भिक्षुओ ! यह दुःखनिरोध नामक तीसरा आर्य्य-सत्य पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुआ । हे भिक्षुगण ! यह दुःख-समुदय नामक आर्य्य-सत्य साक्षात् कर्तव्य है । यह पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । हे भिक्षुओ ! इस दुःखनिरोध नामक आर्य्य-सत्य को मैंने साक्षात् कर लिया । यह पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए ।

हे भिक्षुगण ! यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक चौथा आर्य्य-सत्य है । यह पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए । यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्य्य-सत्य भावना करने योग्य है । यह पहले धर्मों में नहीं सुना गया था । हे भिक्षुगण ! इससे

मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए। हे भिक्षुओ! मैंने इस दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्य्य-सत्य की भावना कर ली। यह पहले धर्मों में नहीं सुनी गई थी। इससे मुझ में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक उत्पन्न हुए।

हे भिक्षुओ! जब तक इन चारों आर्य्य-सत्यों का जो त्रिप्रवर्त्तित होकर द्वादशाकार हैं, मुझे यथाभूत सुविशुद्ध ज्ञान-दर्शन नहीं हुआ था, तब तक मैंने न देवलोक में न मारलोक में, न श्रमण और ब्राह्मणीय प्रजा में और न देव और मनुष्यों में यह स्पष्ट कहा था कि मुझे अनुत्तर सम्यक् संबोधि प्राप्त हुई और मैं अभिसंबुद्ध हुआ हूँ। हे भिक्षुगण! जिस समय से मुझे इन चारों आर्य्य-सत्यों का जो त्रिप्रवर्त्तित होकर द्वादशाकार हैं, यथाभूत सुविशुद्ध ज्ञान-दर्शन हुआ, तब से मैंने देवलोक में, मारलोक में, श्रमण और ब्राह्मणीय प्रजा में, देवों और मनुष्यों में यह प्रकट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् संबोधि हुई और मैं अभिसंबुद्ध हुआ, मुझ में ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हुए, मेरा चित्त निर्विकार और विमुक्त हुआ। अब मेरा अंतिम पुनर्भव न होगा।"

यह उपदेश सुन कौंडिन्य ने सब से पहले महात्मा बुद्धदेव के धर्म को स्वीकार किया। इस प्रकार पाँच दिन तक लगातार रात के समय उपदेश सुनकर धीरे धीरे क्रमशः वप, भद्रिय, महानाम और अश्वजित् ने भी महात्मा बुद्धदेव का धर्म स्वीकार किया और सब को भगवान् ने परिव्राज्य ग्रहण करा यह उपदेश किया-"स्वाखा-तो धम्मो। चरत ब्रह्मचरियं सम्मादुक्खसंत किरियायाति याव तेसं

आयुस्मन्तानं उपसम्पदा अहोसि।" अर्थात् धर्म स्वयं ख्यात है। समस्त दुःखों का नाश करने के लिये जब तक तुम्हें उपसम्पदा की प्राप्ति न हो, ब्रह्मचर्य्य पालन करो।

---

(१४) प्रथम चातुर्मास्य

कौंडिन्य प्रथमं कृत्वा पंचकाश्चैव भिक्षवः ।
षष्टीनां देवकोटीनां धर्मचक्षुर्विशोधितम् ॥

पंचवर्गी भिक्षुओं को धर्मचक्र का उपदेश कर उन्हें अपने धर्म की दीक्षा दे गौतम बुद्ध वर्षा ऋतु के आ जाने से तीन मास पर्य्यंत काशी के ऋषिपतन नामक वन में पंचवर्गीय भिक्षुओं के आश्रम में रहे। वे नित्य अपने शिष्यों के साथ नगर में भिक्षा कर भोजन करते और आश्रम में धर्म का उपदेश करते रहे।

पंचवर्गीय भिक्षुओं की दीक्षा हो जाने पर असित देवल का भागिनेय नालक वा नारद यहीं आकर भगवान् की शरण में पहुँचा। भगवान् बुद्ध ने उसे धर्म का उपदेश कर मौन व्रत का उपदेश दिया। नालक भगवान् का उपदेश ग्रहण कर मौनी हो गया।

इसी बीच में काशी के एक समृद्धशाली सेठ को जिसका नाम यश था, वैराग्य उत्पन्न हुआ। महावग्ग में लिखा है कि यश बड़ा श्रीसम्पन्न था। उसके तीन अद्भुत प्रासाद थे जिनमें वह जाड़े, गर्मी और वर्षा में अपना जीवन बड़े आनंद से बिताया करता था। एक दिन यश अपने वर्षा-ऋतु के प्रासाद में था और दिन रात अपने मित्रोंके साथ नाच रंग में लगा रहा। अधिक रात बीतने पर सब लोग थककर इतस्ततः पड़कर निद्रा के वशीभूत हो गए। उस समय उसे संसार की असारता का ज्ञान हुआ और वैराग्य उत्पन्न हुआ। यश ने अपने प्रासाद से निकलकर मृगदाव की राह ली।

वहाँ उसे भगवान् बुद्धदेव एक वृक्ष के मूल में योगासन लगाए बैठे मिले। यश " उपद्रुतं वत भो ! उपस्सटं वत भो ! " अर्थात् "घोर उपद्रव है, कठिन आपत्ति है ' कहता चला जा रहा था कि भगवान् ने उसे जाते हुए देखकर बुलाया और कहा " यश ! सच है, बड़ा उपद्रव हो रहा है। आओ, हम तुम्हें धर्म का उपदेश देंगे। " गौतम की बात सुन यश उनके पास गया और अभिवादन कर बैठ गया। भगवान् ने उससे दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा आदि कहकर धर्मचक्र का उपदेश किया। यश की आंतरिक आँखें खुल गईं। उसने उनका धर्म स्वीकार कर परिव्राज्य ग्रहण कर लिया।

दूसरे दिन यश का पिता अपने पुत्र के निकल जाने से अत्यंत दुःखी हो उस को खोजने निकला और खोजता हुआ मृगदाव में भगवान् बुद्धदेव के आश्रम में पहुँचा। भगवान् ने उसे भी यश की भाँति दान, शील आदि के उपदेश देकर उसके अंतःकरण में भी वैराग्य का बीज बोया। यश के पिता को भी ज्ञान हो गया। जब पिता ने यश को घर चलने के लिये कहा, तो वह भगवान् का मुँह देखने लगा। गौतम ने कहा " सेठ ! यश को तो विराग हो गया; उसने धर्म को जान लिया।" पिता ने उसकी यह दशा देख महात्मा बुद्धदेव और यश दोनों को अपने घर भोजन करने के लिये आमंत्रित किया। दूसरे दिन गौतम बुद्ध यश को साथ लेकर उसके पिता के घर भिक्षा के लिए आए और उन्होंने भिक्षा ग्रहण कर उसके परिवार को शील आदि का उपदेश किया और वे अपने आश्रम को लौट गए।

यश के गृह त्याग कर संन्यास ग्रहण करने पर उसके चार मित्रों को जिनके नाम विमल, सुबाहु, पुण्यजित और गवांपति थे, बड़ा विस्मय हुआ। वे लोग अपने मन में कहने लगे—"यश सर्वैश्वर्य्य-संपन्न होने पर भी क्यों घर छोड़कर परिव्राजक हो गया।? अवश्य परिव्राजक होने में उसने कोई अलौकिक लाभ देखा होगा।" यह विचार कर वे चारों संसार से विरक्त हो भगवान् बुद्धदेव के पास पहुँचे और भगवान् का उपदेश ग्रहण कर परिव्राजक हो गए।

इसके बाद ही धीरे धीरे काशी के पचास और मनुष्य भगवान् बुद्धदेव के पास क्रमशः आ आकर उनके धर्मोपदेश सुनकर परिव्राजक हो गए। इस प्रकार काशी में वर्षा ऋतु में रह भगवान् बुद्धदेव ने पाँच पंचवर्गीय भिक्षु, नालक, तथा यश और उसके चार मित्र और पचास अन्य नागरिकों को—सब मिलकर एकसठ मनुष्यों को—परिव्राजक बनाया और इसके अतिरिक्त सैकड़ों गृहस्थों को धर्मोपदेश दिया। कहते हैं कि भगवान् ने यहीं "संघ" का संगठन किया और यहीं से 'बुद्ध, धर्म और संघ' तीनों अंग बुद्ध धर्म के परिपूर्ण हुए जो बौद्धधर्म के 'रत्न-त्रय' कहलाते हैं।

चातुर्मास्य बीत जाने पर भगवान् बुद्धदेव ऋषिपतन से उरुवेला जाने को उद्यत हुए और आश्विन मास की पूर्णिमा को अपने शिष्यों को बुलाकर उन्होंने सब को यह आज्ञा दी—'हे भिक्षुओ! आप लोग चारों दिशाओं में जाकर संतप्त-हृदय संसारी जीवों को मोक्ष का उपदेश कीजिए। पर एक बात स्मरण रखिए कि सब लोग अकेले अकेले एक एक मार्ग से जाइए और कहीं दो आदमी एक

साथ न जाइए । शिष्यवर्गो ! संसार में धर्म के उपदेश की बड़ी आवश्यकता है। सब लोग सांसारिक सुखों में, जो वास्तव में घोर दुःख हैं, निमग्न हैं। उन्हें वास्तविक सुख की जिज्ञासा नहीं है, अतः आप लोग जाइए और चारों ओर धर्म का डंका बजाकर सोते हुए जीवों को जगाइए'—

प्रपूरय धर्मशंखं प्रताड़य धर्मदुंदुभिं ।
प्रसारय धर्मध्वजां धर्मं कुरु धर्मं कुरु धर्मं कुरु ॥

---

(१५) उरुवेला

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यः।

ऋषिपतन में पहला चातुर्मास्य समाप्त कर महात्मा गौतम बुद्ध अपने शिष्यों को चारों दिशाओं में उपदेश करने के लिये भेजकर काशी से उरुवेला की ओर चले। मार्ग में एक जंगल पड़ता था जिसका नाम कापास्य वन था। इस जंगल में भद्रवर्गीय कुमार जिनकी संख्या तीस थी, विहार करने आए थे। इन कुमारों में उन-तीस राजकुमारों का तो व्याह हो गया था और वे लोग सपत्नीक विहार के लिये वहाँ पधारे थे, पर उनमें से एक अविवाहित था और उसके लिये एक वेश्या को बुलवाया गया था। तीसों भद्रीय कुमार उसी वन में डेरा डाले अपनी अपनी स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे। एक दिन सब लोग मद्य पीकर रात के समय उन्मत्त हो गए और अचेत होकर सो गए। वेश्या ने ऐसे समय जो कुछ उसके हाथ लगा, लेकर वहाँ से रास्ता लिया। प्रातःकाल जब सब लोगों का नशा उतरा तो उन्हें मालूम हुआ कि वेश्या बहुत कुछ माल असबाब लेकर चली गई। सब लोग यह देख बड़े व्याकुल हुए और एक साथ उस वेश्या को ढूँढ़ने लगे।

वे लोग वन में उस वेश्या को इधर उधर ढूँढ़ रहे थे कि अचानक उन्हें सामने गौतम बुद्ध एक पेड़ के नीचे बैठे हुए दिखाई पड़े। सब लोग महात्मा बुद्ध के पास गए और उनसे पूछने लगे कि- " भगवन्! आपने किसी स्त्री को जाते देखा है ? " भगवान् बुद्ध-

देव ने उनसे पूछा कि—" कुमार ! तुम क्यों उस स्त्री को ढूँढ़ रहे हो ? " भद्रवर्गीय कुमारों ने महात्मा बुद्ध से सारा समाचार कह सुनाया। भगवान् उनसे सब हाल सुनकर बोले—" कुमारो ! भला तुम मुझे यह तो बताओ कि तुम स्त्री को तो ढूँढ़ रहे हो, पर क्या तुम लोगों ने कभी अपनी आत्मा को भी ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है ? यह तो मुझे बताओ कि तुम लोग स्त्री-जिज्ञासा को अच्छा समझते हो वा आत्म-जिज्ञासा को ? " भद्रीय कुमारों ने थोड़ी देर तक विचार करके कहा—" महाराज ! हम लोग आत्मा की जिज्ञासा को श्रेष्ठ समझते हैं। " गौतम ने कहा—" अच्छा कुमार ! यदि तुम लोग आत्मा की जिज्ञासा करना चाहते हो तो आओ, मैं तुम्हें बताऊँगा। "

गौतम की बात सुन कर राजकुमार लोग अभिवादन कर उनके पास बैठ गए और गौतम बुद्ध उन्हें उपदेश करने लगे। गौतम ने उनसे दान और शील की महिमा वर्णन कर स्वर्ग की कथा कही। फिर उन्होंने कामों की अनित्यता का वर्णन किया और सुकृति की प्रशंसा की। फिर निष्कर्म का वर्णन करते हुए दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग का उपदेश किया। गौतम का उपदेश सुन भद्रीय कुमारों की आँखें खुल गईं और उन्हें वैराग्य हो गया। गौतम ने उन्हें परिव्राजक बना ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दे धर्मोपदेश करने के लिये चारों दिशाओं में भेज स्वयं उरुवेला की राह ली।

उरुविल्व-वन में निरंजरा * नदी के किनारे काश्यपगोत्री तीन

* इसे निरंजना भी कहते हैं।

महा विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उन विद्वानों का नाम विल्वकाश्यप, नदीकाश्यप और गयकाश्यप था। ये तीनों सगे भाई और वेदपारंगत तथा दार्शनिक विद्वान् थे। विल्वकाश्यप उरुविल्ववन में अपने पाँच सौ शिष्यों को वेदाध्ययन कराता और अग्नि को धारण कर के रहता था; और नदीकाश्यप निरंजरा नदी के तट पर अपने तीन सौ विद्यार्थियों को अध्ययन कराता तथा अग्निहोत्र करता रहता था। उसका तीसरा भाई गयकाश्यप गया में रहता था। उसके पास दो सौ विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। ये तीनों ब्राह्मण बड़े विद्वान, अग्निहोत्री और कर्मनिष्ठ थे।

गौतम बुद्ध कापास्य वन से चलकर उरुविल्व वन में विल्वकाश्यप के आश्रम पर पहुँचे। विल्वकाश्यप अपने आश्रम में बैठा अपने शिष्यों को अध्ययन कराता था। उसके अग्निकुंड का आकाशव्यापी धूआँ चारों ओर छा रहा था। गौतम ने विल्वकाश्यप से कहा—"यदि आपको कोई कष्ट न हो तो मैं आपके आश्रम में निवास करूँ।" विल्वकाश्यप ने उन्हें अपने आश्रम में रहने की आज्ञा दी *। भगवान् बुद्धदेव उसके आश्रम के पास एक वृक्ष के

---

* महावग्ग का मत है कि विल्वकाश्यप ने गौतम बुद्ध के आश्रय मांगने पर कहा था कि वहां अग्न्यागार के सिवा दूसरा स्थान नहीं है और उसमें एक परम विषधर सांप रहता है। गौतम रात को वहीं रहे और अपनी दिव्यशक्ति से उस नाग को पकड़कर उन्होंने कमंडल में बंद कर दिया। विल्वकाश्यप उनकी इस ऋद्धि तथा अन्य अनेकों ऋद्धियों को देख उनका परम भक्त हो गया और अंत को उनसे 'परिव्राज्य' ग्रहण किया।

नीचे रहने लगे। रहते रहते उरुविल्वकाश्यप और भगवान् बुद्धदेव में मैत्री हो गई और धीरे धीरे उरुविल्वकाश्यप की यह मैत्री श्रद्धा और भक्ति में परिणत होने लगी। एक दिन बुद्धदेव ने समय देख उरुविल्वकाश्यप से अध्यात्म-कथा प्रारंभ की और कहा—

न नग्गचरिय न जटा न पंकं अनासका थंडिलसायिका वा।
रजो च भल्लं, उक्कुटकप्पधानं, शोधंति मिच्चं अवितीण्णकंख॥

हे विल्वकश्यप! जिसकी कांक्षा दूर नहीं हुई है, उस मनुष्य को न नग्न रहना पवित्र कर सकता है और न जटा रखने और पंक लपेटने से वह पवित्र हो सकता है। उसके लिये अनशन व्रत और अग्न्यागार में भूमिशयन करना, शरीर में भस्म रमाना और उकडूँ बैठे रहना सब व्यर्थ है।

विल्वकाश्यप को भगवान् गौतम बुद्ध की यह बात सुन ज्ञान हो गया। उसने अपने मन में कहा—"सच है, तब व्यर्थ अपना समय मैंने अब कर्मकांड के आडंबर में गँवाया और अध्यात्म की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। अच्छा, जभी से सोचा जाय, तभी से सही।" यह विचार विल्वकाश्यप अपने तीन हजार अंतेवासियों के साथ भगवान् बुद्धदेव का उपदेश सुन परिव्राज्य ग्रहण के लिये उद्यत हो गया और उसने अपनी अरणी आदि अग्निहोत्र के साधनों को निरंजरा नदी में प्रवाहित कर दिया। भगवान् बुद्ध ने उसे और उसके शिष्यों को ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दे उन्हें संन्यास ग्रहण कराया।

बिल्वकाश्यप के संन्यास ग्रहण करने और अग्निहोत्र के परित्याग करने का समाचार पा नदीकाश्यप और गयकाश्यप भी अपने शिष्यों सहित महात्मा बुद्धदेव की शरण में आए और उनसे ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा ले उन्होंने संन्यास ग्रहण किया।

उरुवेला से गौतम काश्यपत्रय और उनके एक सहस्र अंतेवासियों को साथ लिए गयशीर्ष पर्वत पर गए और वहाँ थोड़े दिनों तक रहे। एक दिन गौतम बुद्ध ने भिक्षुओं के संघ में सब को आदेश कर के कहा—

* "हे भिक्षुओ ! सब जल रहे हैं। यह विचारना चाहिए कि कौन जल रहे हैं ? चक्षु इंद्रिय जल रही है। रूप जल रहा है। चक्षु इंद्रिय से जो विज्ञान उत्पन्न होता है, वह भी जल रहा है। आँख के विषय जल रहे हैं। यह आँख और जो इस आँख के विषय हैं

---

* सब्बं भिक्खवे आदित्तं। किंच भिक्खवे सब्बं आदित्तं ?। चक्खुं आदित्तं, रूपा आदित्ता, यमिदं चक्खुं यं चक्खु विञ्ञाणं आदित्तं, चक्खुसं फस्सा आदित्तो। यमिदं चक्खुं यं चक्खु पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तंपि आदित्तं। केन आदित्तं ? रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्तं। जातिया जराय मरणेन सोकेभि परिदेवेभि दुक्खेभि दोमनस्सेभि उपायासेभि आदित्तं। सोतं आदित्तं। सद्दा आदित्ता। घाणं आदित्तं। गंधा आदित्ता। जिह्वा आदित्ता। रसा आदित्ता। कायो आदित्तो फोटब्बा आदित्ता। मनो आदित्तो। यमिदं मनोसंफस्सपच्चया उपज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तंपि आदित्तं। केन आदित्तं ? रागग्गिना दोसग्गिना मोहग्गिना आदित्तं। जातिया जराय मरणेन सोकेभि परिदेवेभि दुक्खेभि दोमनस्सेभि उपायासेभि आदित्तं ति वदामि। एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियसावको चक्खुस्मि पि निब्बिंदति। रूपेसुपि

जिनसे सुख, दुःख वा सुख और दुःख दोनों से भिन्न वेदना उत्पन्न होती है, वह भी जल रहे हैं। पर हे भिक्षुओ! यह तो समझो कि यह सब किस आग से जल रहे हैं? हमसे सुनो। यह सब राग की आग से, दोष की आग से और मोह की आग से जल रहे हैं। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख, दौर्मनस्य इत्यादि परिणामों से जल रहे हैं। इसी प्रकार श्रोत्रेंद्रिय और उसका विषय गंध, जिह्वा और उसका विषय रस, शरीर और उसका विषय स्पर्श, मन और उसका विषय धर्म सब जल रहे हैं। रागाग्नि, दोषाग्नि और मोहाग्नि उन्हें जला रही है। जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेवना, दुःख को जानकर श्रुतवान् आर्य श्रावक को उचित है कि वह चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण और गंध, जिह्वा और रस, शरीर और स्पर्श तथा मन और धर्म से आसक्त न हो। निर्वेद प्राप्त होकर विराग को प्राप्त हो। विराग प्राप्त होने से

निब्बिंदति। चक्खुविञ्ञाणेपि निब्बिंदति। चक्खुसम्फस्सेपि निब्बिंदति। यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति, वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिंपि निब्बिंदति। सोतस्मिंपि निब्बिंदति। सद्देसुपि निब्बिंदति। घानस्मिंपि निब्बिंदति। गंधेसुपि निब्बिंदति। जिव्हायपि निब्बिंदति। रसेसुपि निब्बिंदति। रसेसुपि निब्बिंदति। कायस्मिंपि निब्बिंदति फोट्ठब्बेसुपि निब्बिंदति। मनस्मिंपि निब्बिंदति। धम्मेसु पि निब्बिंन्दति। मनो विञ्ञाणेपि निब्बिंदति। मनोसम्फस्सेपि निब्बिंदति। यमिदं मनो सम्फस्स पच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिंपि निब्बिंन्दति। निब्बिंदं विरज्जति। विरागो विरज्जति। विरत्तस्मिं विमुत्तम्हीति ञाणं होति। खीणाजाति। वुसितं ब्रह्मचरियं। कतं करणीयं। नापरं इत्तत्था याति पजानातीति।

ही मनुष्य विरक्त होता है। विरक्त होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। तब उसका जन्मक्षय होता है। तभी उसका ब्रह्मचर्य समाप्त होता है अर्थात् उसे ब्रह्मचर्य पालन का फल मिलता है। वह अपना कर्तव्य समाप्त करता है। वह फिर यहाँ आकर जन्म-ग्रहण नहीं करता।

(१५) राजगृह

सब्बपापस्स समनं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्तपरियोद्दवनं एतं बुद्धानुसासनं॥

गयशीर्ष पर्वत पर कुछ दिन काल विताकर महात्मा बुद्धदेव भिक्षु संघ साथ लिए राजगृह गए। राजगृह में वे यष्टिवन में उतरे। राजा विंबसार को जब भगवान् बुद्धदेव के आने का समाचार मिला, तब वे अनेक ब्राह्मण पंडितों को साथ लेकर यष्टिवन में भगवान् बुद्धदेव के पास आकर उपस्थित हुए। अभिवादन और कुशल प्रश्नानंतर सब लोग यष्टिवन में बुद्धदेव के पास बैठ गए। महात्मा बुद्धदेव के पास मगध के परमपूज्य विद्वान् अग्निहोत्री उरुविल्व-काश्यप को अपने भाइयों और शिष्य मंडली समेत बैठे देख सब पंडितों के मन में यह क्षोभ उत्पन्न हुआ कि उरुविल्वकाश्यप भगवान् बुद्धदेव के अंतेवासी हैं अथवा उन्होंने संन्यास ग्रहण किया है और बुद्धदेव ने उनसे संन्यास गृहण कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया है। लोगों को उरुविल्वकाश्यप जैसे कर्मनिष्ठ ब्राह्मण को अग्निहोत्र त्याग कर श्रमणरूप धारण किए देख अत्यंत विस्मय हुआ। जब लोगों से न रहा गया तो उन्होंने विवश हो उरुविल्व-वासी उरुविल्वकाश्यप से पूछा कि "महात्मन् उरुविल्व-काश्यप, क्या * आप कृपा कर यह बता सकते हैं कि आपने अग्निहोत्र का

---

*किं मेवदिस्वा उरुवेलवासी, पहासि आग्गिं किसको वदानो।
पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थं, कथं पहीनं तव आग्गिहुत्तं।

त्याग क्यों किया ? उरुविल्वकाश्यप ने कहा—" यज्ञों * के करने का फल केवल स्वर्गमात्र है। स्वर्ग में रूप, शब्द, रस, आदि तथा स्त्रियाँ और कामनाएँ हैं और यह उपाधियों में मलवत् हैं; यह जानकर मेरा चित्त अग्निहोत्र और इष्टियों में नहीं लगता।" यह कहकर उरुविल्वकाश्यप भगवान् बुद्धदेव के चरणों पर यह कहते हुए गिर पड़ा कि—"आप ही मेरे शासक हैं और मैं आपका श्रावक हूँ।" काश्यप की यह बात सुन उन ब्राह्मणों की शंका जाती रही और वे लोग शांत हो गए। उस समय भगवान् बुद्धदेव ने दान और शील का माहात्म्य वर्णन कर क्रमशः संसार की असारता दिखाते हुए चारों आर्य्य सत्य दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग का उपदेश किया। सब लोगों ने भगवान् बुद्धदेव का उपदेश सुना। बिंबसार और उनके साथी ब्राह्मणों की आँखें खुल गईं और उन लोगों ने बुद्धदेव का नया धर्म स्वीकार कर लिया। राजा बिंबसार ने भगवान् बुद्धदेव से कहा—" महाराज ! मैंने पूर्व में पाँच कामनाएँ की थीं। पहली यह कि मैं राजा होऊँ, दूसरी, मेरे राज्य में सम्यक् संबुद्ध पधारें, तीसरी, मैं भगवान् बुद्ध की पूजा करूँ, चौथी भगवान् बुद्ध हमारे सामने अपने धर्म का उपदेश करें, और पाँचवीं मैं उनका उपदेश ग्रहण कर कृतकृत्य होऊँ। भगवन्, आपके अनुग्रह से आज मेरी वे पाँचों कामनाएँ पूरी हुईं।" यह कह बिंब-

---

* रूपे च सद्दे च अथो रसे च, कामेत्थि याचभिवदन्ति यञ्ञा।
एतं मलंति उपधी सुञत्वा, तस्मानयिट्ठे न हुते अरञ्जिति।

सार ने भगवान् को ससंघ अपने प्रासाद में भोजन करने के लिये आमंत्रित किया।

दूसरे दिन भगवान् बुद्धदेव अपना साधुसंघ लिए महाराज बिंबसार के प्रासाद में भिक्षा करने के लिये पधारे। राजा बिंबसार ने बड़े प्रेम से भगवान् बुद्धदेव को भिक्षुसंघ समेत उत्तम भोजन कराया और चलते समय बिंबसार ने वेणुवन नामक अपना उद्यान कुशोदक ले भगवान् को उनके संघ के लिये दान दिया।

भगवान् बुद्धदेव अपने संघ समेत यष्टिवन से चलकर वेणुवन में पधारे और वहाँ रहकर अपने शिष्यवर्गों तथा आगंतुक गृहस्थ आदिकों को उपदेश करते रहे।

उन दिनों राजगृह के पास संजय नामक एक परम विद्वान् परिव्राजक रहते थे। उनके मठ में दो सौ परिव्राजक रहते थे। उन परिव्राजकों में दो परम विद्वान् परिव्राजक थे जिनका नाम सारिपुत्र और मौद्गलायन था। सारिपुत्र उपतिष्य ग्राम के परम समृद्धिशाली वंकत नामक ब्राह्मण का पुत्र था। उसकी माता का नाम रूपसारी था और इसी लिये उसको लोग सारिपुत्र कहते थे। मौद्गलायन कोलित ग्रामनिवासी सुजात ब्राह्मण का पुत्र था जिसे लोग उसकी माता मौद्गली के नाम से मौद्गलायन कहते थे। उन दोनों ब्राह्मण-कुमारों में बड़ी मित्रता थी। वे दोनों मित्र एक दिन राजगृह के पास सुप्रतिष्ठित नामक तीर्थ के मेले में आए थे और वहीं उन दोनों ब्राह्मणों को वैराग्य उत्पन्न हुआ और दोनों ने संजय परिव्राजक के आश्रम में जाकर संन्यास ग्रहण किया था। वहाँ वे दोनों

एक दिन अश्वजित् * भिक्षु राजगृह में भिक्षा के लिये जा रहा था। दैवयोग से उसी दिन सारिपुत्र भी राजगृह में भिक्षा के लिये गया। मार्ग में सारिपुत्र ने प्रशांत अश्वजित् को भिक्षा के लिये जाते हुए देखा। उसकी प्रसन्न आकृति देखकर उसने अपने मन में सोचा कि यह साधु अत्यंत शांतचित्त और शुद्ध अंतःकरण का दिखाई पड़ता है। इसने अवश्य आत्मतत्व का साक्षात् किया होगा अथवा यह उस मार्ग में उन्मुख हो गया है। अच्छा चलो, इसके पीछे चलकर जिज्ञासा करें। यह विचार कर सारिपुत्र उसके पीछे हो लिया। जब अश्वजित् भिक्षा लेकर नगर के बहार आया, तो पेड़ के नीचे बैठकर भोजन करने लगा। सारिपुत्र भी वहीं उसके पास बैठ गया। जब अश्वजित् भोजन कर चुका, तब सारिपुत्र ने अश्वजित् से सविनय पूछा कि—"भगवान्, आप बड़े प्रशांत देख पड़ते हैं। आप कृपा करके मुझे यह बतलाइए कि आपने किससे शिक्षा ग्रहण की है और आप किस धर्म के अनुयायी हैं।" अश्वजित् ने सारिपुत्र का यह प्रश्न सुनकर कहा—

ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतु तथागतो आह।
तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणो 'ति'॥

हे सारिपुत्र! जो हेतु से उत्पन्न धर्म दुःख रूप है, तथागत ने उनका हेतु समुदय बतलाया है और समुदय का निरोध भी बतलाया है। महाश्रमण गौतम बुद्ध ने उस निरोध का मार्ग समझकर हम लोगों को बतलाया है; वह हमारे शिक्षक हैं। मैं उनका एक लघु श्रावक हूँ।

---

* अश्वजित पंचभद्रवर्गियों में से था। [illegible]

अश्वजित् की यह सारगर्भित बात सुनकर सारिपुत्र को ज्ञान हो गया। उसकी आँखें खुल गईं, वह वहीं से दौड़ा हुआ मौद्गलायन के पास गया और उसने उससे सारा समाचार कह सुनाया। मौद्गलायन भी उसके साथ संजय के पास गया और बोला कि हम लोगों को भगवान् बुद्धदेव के पास चलकर धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए। संजय ने उसकी बात नहीं मानी और वह महात्मा बुद्धदेव के पास चलकर धर्मजिज्ञासा करने पर उद्यत नहीं हुए। निदान दूसरे दिन सारिपुत्र और मौद्गलायन दोनों राजगृह से वेणुवन को धर्मजिज्ञासा के लिये गए। संजय के अन्य शिष्य भी उन दोनों के साथ वेणुवन में जहाँ भगवान् बुद्धदेव भिक्षुसंघ को उपदेश कर रहे थे, आए।

दोनों परिव्राजक आकर भगवान् बुद्धदेव के चरणों पर गिर पड़े और उन्होंने उनसे उपदेश करने की प्रार्थना की। भगवान् ने उन्हें ब्रह्मचर्य्य का उपदेश देकर कहा कि, जाओ, सब दुःखों का नाश करने के लिये उस समय तक ब्रह्मचर्य्य का पालन करो जब तक कि उपसंपदा लाभ न हो।

भगवान् ने सारिपुत्र और मौद्गलायन को उपदेश दे कर उन्हें अपने शिष्यों में सब पर प्रधानता दी। इस प्रकार राजगृह में द्वितीय चातुर्मास्य बिताकर उन्होंने अनेक लोगों को समय समय पर उपदेश किया जिसका घटनानुसार सविस्तर वर्णन त्रिपिटक में भरा पड़ा है।

राजगृह में भगवान् के उपदेश से इतने पुरुषों ने संन्यास ग्रहण किया कि स्त्रियों ज को, व वे नगर वा ग्राम में भिक्षा के लिये

आया करते थे। उन्हें देखकर अत्यंत भय होता था और वे परस्पर कहा करती थीं—

आगतो खो महासमणो मगधानं गिरिब्बजं।
सब्बे संचेय नीत्वान कं सु दानिं नयिस्सति॥

अर्थात् मागधों के गिरिव्रज नामक प्रदेश में अब तो महाश्रमण आए हैं, सब लोगों को एक एक करके उन्होंने संन्यास ग्रहण कराया और उन्हें वे अपने साथ ले गए। आज वे फिर आए हैं। देखें, अब किसे ले जाते हैं।

जब स्त्रियाँ चारों ओर भिक्षुओं को जब वे भिक्षा लेने के लिये जाते थे, देख इस प्रकार बातें करने लगीं तो भिक्षुओं ने भगवान् बुद्धदेव से निवेदन किया कि नगर और ग्राम की स्त्रियाँ हम लोगों को देखकर परस्पर तरह तरह की बातें करती हैं और कहती हैं कि ये लोग सब को तो मूँड़कर अपने साथ ले गए; अब न जाने किसे लेने के लिये आए हैं। भगवान् ने उस समय उन भिक्षुओं से कहा—"हे भिक्षुओ, जिस समय स्त्रियाँ तुम्हें देख कर ताना मारें, उस समय तुम लोग भी उनसे यह कह दो कि तथागत और उसके भिक्षु लोगों को महावीरों की तरह धर्मपूर्वक पकड़कर ले जाते हैं।" जब वे उन्हें धर्म से ले जाते हैं, तब इसमें ईर्ष्या करने की कौन सी बात है। वह गाथा यह है—

नयंति हि महावीरा सद्धम्मेन तथागता।
धम्मेन नीयमानानंका उसूया विजानतं 'ति'॥

(१६) कपिलवस्तु

उत्तिट्ठेय पब्बजेय धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेते इह लोके परम्हि च।

जब महात्मा गौतम बुद्ध धर्म के प्रचार की दुंदुभी बजाते उरुवेला से राजगृह में आए और वहाँ उन्होंने धर्म का प्रचार करना प्रारंभ किया, तब उन के नए धर्म की ख्याति उत्तरीय भारत में चारों ओर फैल गई। उनके बुद्ध होने और राजगृह में रहकर धर्म का प्रचार करने का समाचार जब कपिलवस्तु में पहुँचा, तब उनके पिता महाराज शुद्धोदन को अपने पुत्र के देखने की इच्छा और प्रेम ने विह्वल कर दिया। उन्होंने अपने एक मंत्रिपुत्र को अनेक पुरुषों के साथ राजगृह में सिद्धार्थ को जो उस समय बुद्ध हो गए थे, बुलाने के लिये भेजा। पर दैवयोग से वह मंत्री और उसके सारे साथी जब राजगृह में पहुँचे, तब वे महात्मा बुद्धदेव के धर्मोपदेशों से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें सच्चा-वैराग्य उत्पन्न हो गया और सब ने शिखा मुँड़ा भिक्षुओं का भेष ग्रहण कर लिया और कपिलवस्तु वा महाराज शुद्धोदन के सँदेसे को वे ऐसा भूल गए कि उन्होंने कभी महात्मा बुद्धदेव के सामने उसकी चर्चा भी न चलाई।

जब महीनों बीत गए और वह मंत्रिपुत्र जिसे बुद्ध को बुलाने के लिये भेजा था, नहीं लौटा और न कुछ उसका सँदेसा ही मिला, तब लाचार हो घबराकर महाराज शुद्धोदन ने दूसरे राजपुरुष को

उन्हें बुलाने के लिये भेजा। पर उसकी भी वही दशा हुई जो पहले की हुई थी और वह भी अपने साथियों समेत पात्र चीवर ग्रहण कर भिक्षु हो गया। इस प्रकार महाराज शुद्धोदन ने लगातार कई राजपुरुषों को यथाक्रम कई बार समय समय पर महात्मा बुद्धदेव को बुलाने के लिये भेजा। पर जब राजगृह से उनमें से एक पुरुष भी वापस न आया, तब महाराज शुद्धोदन को बड़ी चिंता हुई और वे पुत्र-वियोग और प्रेम से अत्यंत विह्वल हो गए। वे अत्यंत घबरा गए और विवश होकर उन्होंने कालउदायिन् नामक अपने मंत्रिपुत्र को जो भगवान् बुद्धदेव के साथ खेलनेवाला और अत्यंत प्रबंधकुशल था, बुलाया और उसे आग्रहपूर्वक राजगृह जाकर गौतम बुद्धदेव को कपिलवस्तु ले आने के लिये आज्ञा दी। काल-उदायी महाराज की आज्ञा पाकर राजगृह चलने के लिये प्रस्तुत हुआ। महाराज शुद्धोदन ने कालउदायी को विदा करते समय अपनी आँखों में आँसू भरकर कहा—"बेटा कालउदायी! मुझे स्मरण रखना और दूसरों की भाँति तुम भी राजगृह पहुँचकर इस दुखी बुड्ढे को न भूल जाना। कुमार से मेरा सँदेसा कहना और एक बार उन्हें कपिलवस्तु में अवश्य ले आना। कहना कि तुम्हारा बुड्ढा बाप तुम्हारे वियाग में रो रोकर अंधा हो रहा है। एक वार तो वह मुझे अपने दर्शन दे जाय। इस क्षणभंगुर जीवन का ठिकाना ही क्या है! आज मरूँ वा कल। ऐसा न हो कि कुमार के देखने की लालसा मेरे मन ही में रह जाय और प्राण निकल जायँ।"

कालउदायी महाराज शुद्धोदन से शपथ करके कपिलवस्तु से विदा हुआ और थोड़े ही दिनों में अपने साथियों समेत राजगृह में पहुँचा। भगवान् बुद्धदेव का प्रथम चातुर्मास्य राजगृह में समाप्त हो चुका था और वे वेणुवन में भिक्षुसंघ में बैठे लोगों को उपदेश कर रहे थे। भगवान् के उपदेशों को सुन कालउदायी पर, उनका इतना प्रभाव पड़ा कि वह विवश हो उनके धर्म को स्वीकार कर भिक्षु बन अपने साथियों समेत अन्यों की भाँति संघ में रहने लगा। थोड़े दिनों के बाद हेमंत ऋतु का भी अंत हो गया और वसंत ऋतु के आगमन से प्रकृति में अद्भुत परिवर्तन प्रारंभ हुआ। एक दिन कालउदायी ने भगवान् बुद्धदेव से निवेदन किया—"भगवन्! भिक्षुओं को सदा एक स्थान पर न रहना चाहिए। बहुत दिनों तक एक स्थान में रहने से उनमें रागादि दोषों के उत्पन्न होने की संभावना है। भिक्षुओं को वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में पर्यटन करने की आवश्यकता है। अतः यदि अनुचित न हो तो भगवान् इस ऋतु में भिक्षुसंघ के साथ देशाटन के लिये निकलें। अच्छा हो, यदि संघ के लोगों के साथ भगवान् कपिलवस्तु की ओर पधारें और महाराज शुद्धोदन को जो आपके वियोग में अत्यंत क्षीण हो गए हैं, शांति प्रदान करें।" भगवान् बुद्धदेव को कालउदायी की बात अच्छी लगी और वे अपने संघ समेत राजगृह से कपिलवस्तु को प्रस्थित हुए।

दो महीने लगातार चलकर भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्य-संघ समेत कपिलवस्तु में पहुँचे और कपिलवस्तु के पास न्यग्रोध-

कानन में ठहरे। कपिलवस्तु में उनके आने की खबर पाकर सब छोटे बड़े उन्हें देखने के लिये उठ दौड़े। महाराज शुद्धोदन शाक्यों के साथ बड़े दल बल से महात्मा बुद्धदेव के दर्शन के लिये न्यग्रोध-कानन में आए और सिद्धार्थ को देख अपना जन्म सफल कर बड़े आनंदित हुए। महाराज शुद्धोदन और उनके भाइयों ने समझा था कि कुमार हम लोगों के साथ वही बर्ताव करेंगे जो वे पहले राजकुमार होने की अवस्था में करते थे। पर बुद्धदेव ने उनके आने पर न तो उनको अभ्युत्थान दिया और न उन्हें प्रणाम ही किया; किंतु वे अपने स्थान पर बैठे हुए सब लोगों को उपदेश करते रहे। उनका यह अद्भुत आचरण और भाव देख कितनों के मन में क्षोभ हुआ; पर महाराज शुद्धोदन समझ गए कि अब कुमार, सिद्धार्थकुमार नहीं है। वह संसार को दुःख से छुड़ानेवाला बुद्ध तथागत है, उसमें भेदभाव नहीं है, वह सब में समभाव रखता है और सब को समान दृष्टि से देखता है। निदान महाराज शुद्धोदन ने बुद्धदेव को अभिवादन किया और उन्हें देख सब लोग अभिवादन कर बैठ गए। थोड़ी देर तक सब लोगों ने उनका धर्म-उपदेश सुना और वे उससे शांति लाभ कर कपिलवस्तु नगर में लौट आए।

दूसरे दिन भगवान बुद्धदेव भिक्षुसंघ के साथ कषाय-वस्त्र धारण कर हाथ में भिक्षापात्र ले कपिलवस्तु में भिक्षा के लिये पधारे। वे भिक्षुसंघ के नियमानुसार घर घर भिक्षा लेने लगे। सब कपिलवस्तुवासी कुमार को भगवा वस्त्र धारण

किए हाथ में भिक्षापात्र लिए देखकर रोने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया कि आज सिद्धार्थकुमार कपिलवस्तु में भगवा वस्त्र धारण कर भिक्षा पात्र लिए घर घर भिक्षा माँग रहे हैं। यह समाचार राजमहल में पहुँचा। गोपा कुमार को भीख माँगते देख ढाढ़ मारकर रोने लगी। वह अपने ससुर महाराज शुद्धोदन के पास दौड़ी हुई गई और बोली—"अत्यंत लज्जा की बात है कि कपिलवस्तु में आकर भी आर्यपुत्र को घर घर भिक्षा माँगनी पड़े।" महाराज शुद्धोदन नंगे पैर दौड़े हुए भगवान् बुद्धदेव के पास पहुँचे और आँखों में आँसू भरकर कुमार से बोले—"हे वत्स। तुम क्यों द्वार द्वार भिक्षा माँगकर मुझे लज्जित करते हो? क्या तुमने यह समझा है कि मैं तुमको और तुम्हारे संघ को भोजन न दे सकूँगा?" तथागत ने शुद्धोदन की बात सुनकर कहा—"महाराज! यह हमारा कुलधर्म है"। शुद्धोदन कुमार की बात सुन अत्यंत विस्मित हुए और भौंचक होकर बोले—"कुमार! हम क्षत्रिय राजवंश में उत्पन्न हुए हैं। हमारे कुल में कभी किसी ने भिक्षा नहीं माँगी।" बुद्ध ने पिता की यह बात सुनकर कहा—"महाराज, मैं तो राजवंश में नहीं हूँ। मैं तो बुद्धों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। वे ही हमारे पूर्व पुरुष हैं। बुद्ध लोग सदा से भिक्षा माँगकर ही अपना भरण पोषण करते आए हैं और यही भिक्षावृत्ति उनका कुलधर्म है। उसी कुलधर्म के अनुसार मैं भी द्वार द्वार भिक्षा माँगता फिरता हूँ। हे पिता! यदि किसी के पुत्र को कहीं कोई गुप्त निधि मिल जाय, तो उसका एकांत कर्तव्य है कि वह उस निधि में से सर्वोत्कृष्ट रत्न पिता के

चरणों में अर्पित करे। इसी तरह मुझे जो परम निधि प्राप्त हुई है, उसमें से कुछ रत्न मैं आपको समर्पण करता हूँ।"

यह कह बुद्धदेव वहीं खड़े हो गए और पिता से बोले—"हे पिता! उठो, आलस्य मत करो। सद्धर्म का आचरण करो। धर्म करनेवाला इस लोक और परलोक में सुख से रहता है। सद्धर्म का आचरण करो, भूलकर भी असद्धर्म का अनुष्ठान मत करो। सद्धर्म का पालन करनेवाला इस लोक और परलोक दोनों में सुखपूर्वक रहता है।"*

महाराज शुद्धोदन भगवान् बुद्धदेव का यह उपदेश सुन उन्हें उनके भिक्षुसंघ समेत राजमहल में ले गए और उन्होंने उन्हें वहाँ अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य खिलाकर उनका और भिक्षुसंघ का सत्कार किया। भोजन कर भगवान् बुद्धदेव ने राजमहल में राज-मंत्री, राजपरिवार और राजकर्मचारियों को अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया और सब लोगों ने उनका धर्मोपदेश सुनकर आध्यात्मिक शांति लाभ की। इस राजमहल के उपदेश में समस्त राजपरिवार और राजमहिलाएँ उपस्थित थीं, पर यशोधरा वहाँ न थी। वह अपनी कक्षा में बैठी रो रही थी और धर्मोपदेश सुनने नहीं आई थी। जब लोग उसे बुलाने गए, तब उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया

---

* उत्तिट्ठे न प्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिंलोके परम्हि च॥
धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिंलोके परम्हि च॥

—"मैं वहाँ न जाऊँगी। यदि भगवान् को मेरा स्नेह होगा, तो वे स्वयं यहाँ मुझे उपदेश करने और दर्शन देने के लिये पधारेंगे।"

उपदेश समाप्त होने पर भगवान् बुद्धदेव महाराज शुद्धोदन की अनुमति ले अपने शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन को साथ ले यशोधरा की कक्षा की ओर पधारे। चलते समय उन्होंने अपने दोनों शिष्यों सारिपुत्र और मौद्गलायन से कह दिया कि—"यदि यशोधरा विलाप करते समय विह्वल होकर मुझे स्पर्श कर ले तो तुम लोग उसे रोकना नहीं।" भगवान् अपने दोनों शिष्यों समेत यशोधरा की कक्षा में पधारे। यशोधरा अपने गृह में भूमि पर बैठी थी। उसने भगवान् को भगवा वेष धारण किए देखकर विलाप करना प्रारंभ किया। वह विह्वल हो उनके पैरों पर गिर पड़ी और फूट फूट कर रोने लगी। भगवान् बुद्धदेव ने उसे अनेक प्रकार के उपदेश दे-कर उसको सांत्वना की। यशोधरा को शांति दे भगवान् अपने भिक्षु-संघ के साथ न्यग्रोधाराम को लौट आए।

अब तक तो महाराज शुद्धोदन को आशा थी कि सिद्धार्थ कुमार आकर राजपद स्वीकार करेगा और वह इस वृद्ध अवस्था में उनसे राज्य का भार लेकर उनका बोझ हलका करेगा; पर उन्होंने जब सिद्धार्थ कुमार की यह अवस्था देखी तो उन्हें नितांत नैराश्य हो गया। अब उन्होंने मंत्रियों से मंत्रणा कर अपने दूसरे राजकुमार नंद को, जो प्रजावती का पुत्र था और जिसका जन्म भी उसी दिन हुआ था जिस दिन भगवान् बुद्धदेव ने जन्म लिया था, युवराज पद पर अभिषिक्त करने का विचार किया और अच्छे अच्छे ज्योति-

पियों को बुलाकर उसके अभिषेक के लिये दिन निश्चित किया। अभिषेक का सामान होने लगा और सब सामग्री एकत्र की गई। शुभ मुहूर्त आने पर अनेक ब्राह्मणों और विद्वानों को भोजन कराया गया। इस उपलक्ष में भगवान् बुद्धदेव को भी ससंघ निमंत्रण दिया गया। अभी अभिषेक का मुहूर्त नहीं आया था कि भगवान् बुद्धदेव जो अपने संघ समेत राजगृह में भोजन कर रहे थे, अपने स्थान से उठे और नंद के हाथ में जो उनके पास ही खड़ा था, अपना भिक्षापात्र देकर अपने संघ समेत न्यग्रोधाराम को सिधारे। नंद भी उनका भिक्षापात्र लिए उनके साथ ही साथ न्यग्रोधाराम को चल पड़ा। जब नंद चलने के लिये राजमहल से निकला, तब उसकी स्त्री ने उसे भगवान् बुद्धदेव के साथ पीछे पीछे जाते देख पुकारकर कोठे पर से कहा—"आर्य्यपुत्र! शीघ्र लौटना।" इसका उत्तर नंद ने भी "अच्छा" कहकर दिया। कौन जानता था कि क्या होनेवाला है। किसे अनुमान था कि नंद कुमार जिसका अभी थोड़ी देर में यौवराज पद पर अभिषेक होनेवाला है, न्यग्रोधाराम में जाकर अभी सिर मुँडाकर भगवा वस्त्र धारण कर लेगा। अस्तु।

जब नंद कुमार भगवान् बुद्धदेव के पीछे उनके संघ के साथ न्यग्रोधाराम में पहुँचा, तब भगवान् वहाँ बैठ गए और उनके संघ के लोग उनके चारों ओर घेरा बाँधकर बैठे। नंद कुमार ने भिक्षापात्र उनके सामने रख दिया और विनीत भाव से वह उनके सामने खड़ा हो गया। भगवान् बुद्धदेव नंद कुमार को अभिमुख करके बोले—"नंदकुमार! क्या तुम ब्रह्मचर्य्य नहीं पालन कर सकते?"

नंद कुमार बड़े उत्साह से बोल उठा—"मैं क्षत्रिय कुमार होकर कैसे कहूँ कि मैं ब्रह्मचर्य्य नहीं पालन कर सकता। मैं अवश्य कर सकता हूँ।" भगवान् ने उसी दम उसका सिर मुँड़ा उसे चीवर पहना भिक्षा पात्र दे भिक्षु बना संघ में सम्मिलित होने को आज्ञा दी।

बहुत देर तक जब नंद कुमार न लौटा, तब महाराज शुद्धोदन ने अपने आदमियों को न्यग्रोधाराम में नंद कुमार को बुलाने के लिये भेजा। जब वे लोग न्यग्रोधाराम में पहुँचे, तब उन्होंने नंद कुमार को वहाँ भगवा वस्त्र धारण किए भिक्षुसंघ में बैठे हुए देखा। वे लोग वहाँ से लौटकर कपिलवस्तु गए और महाराज शुद्धोदन से उन्होंने सारा समाचार निवेदन किया। महाराज शुद्धोदन नंदकुमार के भिक्षु होने का हाल सुन शोक सागर में डूब गए। पर मंत्रियों के समझाने से उन्होंने धैर्य्य धारण किया और कुमार राहुल को देख अपने मन में संतोष किया।

इस घटना को हुए बहुत दिन नहीं बीते थे कि एक दिन भगवान् बुद्धदेव अपने भिक्षुसंघ के साथ राजमहल में भोजन करने के लिये पधारे। जब वे भोजन कर के अपने संघ समेत उठकर न्यग्रोधाराम चलने लगे, उस समय राहुल की माता यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल से कहा—"हे पुत्र, वह संन्यासी जो भिक्षापात्र लिए भिक्षुसंघ के आगे आगे जा रहे हैं, तुम्हारे पिता हैं। तुम उनके पास जाकर अपने पैतृक दाय की याचना करो।" सात आठ वर्ष का कुमार राहुल राजमहल से दौड़ता हुआ भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा और उनकी छाया को बचाता हुआ उनके पीछे साथ-साथ न्यग्रोधाराम में पहुँचा।

न्यग्रोधाराम में पहुँचने पर भगवान बुद्धदेव अपने संघ समेत वहाँ बैठ गए। राहुल भी उनके पास बैठकर विनीत भाव से बोला—' भगवन्! आप मेरे पिता हैं। आप मेरा पैतृक स्वत्व, जिसका मैं उत्तराधिकारी हूँ, कृपापूर्वक मुझे प्रदान कीजिए।" राहुल की यह प्रार्थना सुन बुद्धदेव ने अपने शिष्य सारिपुत्र को बुला कर कहा—" सारिपुत्र ! तुम राहुल को प्रव्रज्या प्रदान करो। " सारिपुत्र ने उसी समय राहुल के केश मुँडा, उसे पीला भगवा वस्त्र पहना बुद्ध, धर्म और संघ की वंदना करने की आज्ञा दी और राहुल ने बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ग्रहण की।

जब राहुल के संन्यास ग्रहण करने का समाचार महाराज शुद्धोदन को मालूम हुआ, तब वे घबराकर दौड़े हुए न्यग्रोधाराम में बुद्धदेव के समीप पहुँचे और आँखों में आँसू भरकर उनसे बोले—" भगवन्! जब आपने संसार त्याग किया, तब मुझे अत्यंत क्लेश हुआ। मैं दुःख सागर में डूब गया। तदनंतर जब नंदकुमार गृह-त्यागी हुआ, उस समय मुझे और भी अधिक दुःख हुआ। पर मैंने राहुल कुमार को देखकर अपने मन में ढारस बाँधा था। आज आपने कुमार राहुल को भी संन्यास ग्रहण करा के मुझे अत्यंत कष्ट पहुँचाया। मेरे दुःख का हाल मेरे अंतःकरण से पूछिए। मैं इस दुःख से विकल हूँ। मेरा जो कुछ सत्तानाश होना था, सो तो हो ही गया। अब वह बदल नहीं सकता। पर अब आपसे एक बात के लिये आग्रह करता हूँ कि आगे आप किसी बालक को उसके पिता और माता की आज्ञा के बिना संन्यास न दें। यही मेरी अंतिम

प्रार्थना है। " महाराज शुद्धोदन की यह बात सुन भगवान् बुद्धदेव ने उसी समय संघ में इस आज्ञा की घोषणा कर दी कि जो कोई किसी बालक को उसके माता-पिता की आज्ञा और अनुमति के विरुद्ध संन्यास ग्रहण करावेगा, उसे दुष्कृत पाप लगेगा।

(१७) तृतीय चातुर्मास्य

चातुर्मास्य के समीप आ जाने से भगवान् बुद्धदेव ने अपने शिष्यों समेत कपिलवस्तु से प्रस्थान किया। मार्ग में वे अनामा नदी के किनारे अनुपिय नामक आम्रवन में ठहरे थे कि कपिलवस्तु के छः राजकुमार जिनका नाम अनिरुद्ध, आनंद, भद्रिय, किमिल, भगु और देवदत्त था, उपालि नामक नापित के साथ वहाँ आए और भगवान् के उपदेश सुनकर उन्हों ने ब्रह्मचर्य्य ग्रहण किया। कहते हैं कि कुमारों के पहले उपालि को लोगों ने शिष्य होने के लिये बाध्य किया जिसमें शाक्यकुमारों का ज्याति-अभिमान जाता रहे। इन शिष्यों में अनिरुद्ध दिव्यचक्षु हो गया और उपालि विनयपिटक का आचार्य्य तथा आनंद पिटक का संग्रह करनेवाला हुआ।

राजगृह में पहुँचकर बुद्धदेव ने वेणु वन में अपना तृतीय चातुर्मास्य किया। इसी चातुर्मास्यमें उन्होंने महाकश्यप को अपना शिष्य किया। यह महाकश्यप राजगृह के पास के महातीर्थ नामक गाँव का रहनेवाला था। इसके पिता का नाम कपिल था। कपिल मगध में अत्यंत प्रसिद्ध विद्वान् और धनधान्यसंपन्न था। उसका एक ही पुत्र था जिसका नाम पिप्पल था और जो अपने पिता ही के समान विचार-बुद्धि-संपन्न था। पिप्पल का विवाह मद्रास की एक सुंदरी से हुआ था जिसका नाम भद्रकापिलानी था। एक दिन पिप्पल अपने घर पर बैठा था और उसके नौकर चाकर कोठी में से चावल निकाल निकालकर धूप में सुखाने के लिये आँगन में डाल रहे

थे। धूप लगने से चावल में से पाई निकल निकलकर अपनी प्राण-रक्षा के लिये बाहर भाग रहे थे और पक्षी उन्हें खा रहे थे। उस समय पिप्पल की दृष्टि दैवयोग से उन पाइयों पर पड़ी। उसने अपने मन में उनकी दशा देख विचार किया तो उसे गृहस्थाश्रम हिंसापूर्ण कर्म दिखाई पड़ा; जिसमें रहकर कभी मनुष्य हिंसा से सर्वथा बच नहीं सकता। विशेषकर कृषि-कर्म तो उसे सर्वथा परमार्थ का बाधक प्रतीत होने लगा। उसके अंतःकरण में विराग उत्पन्न हुआ और उसने यह निश्चय किया कि चाहे जो हो, अब मैं अवश्य गृहस्थाश्रम परित्याग करूँगा। उसने, अपने चित्त में विराग उत्पन्न होने का समाचार अपनी सहधर्मिणी भद्रकापिलानी से कहा और वह भी उसके साथ गृहत्याग करने को उद्यत हो गई। रात के समय पिप्पलकाश्यप और उसकी स्त्री भद्रकापिलानी दोनों घर से निकलकर चुपके से राजगृह की ओर भाग निकले। थोड़ी दूर तक तो दोनों एक ही मार्ग पर आगे पीछे गए; पर आगे चल कर वह मार्ग दो शाखाओं में फूट गया था। उस स्थान पर पहुँच कर पिप्पल ने भद्रकापिलानी से कहा—"कापिलानी! हम लोग घर से वैराग्य प्राप्त कर के निकले हैं। हमारा उद्देश्य संसार त्याग करना है। जब हमें वैराग्य प्राप्त हो गया, तो फिर साथ रहकर राग उत्पन्न करना अच्छा नहीं है। विधाता को भी यही ठीक जँचता है। देखो, आगे के मार्ग की दो शाखाएँ हो गई हैं; एक दक्षिण को जाती है और एक वाम को। अब हम लोगों को पृथक् होना चाहिए। मैं पुरुष हूँ, अतः मैं स्वभाव से दक्षिण का मार्ग ग्रहण

करता हूँ; तुम भी वाम मार्ग ग्रहण करो। अब यहाँ हमारे पारस्परिक संबंध का अंत होता है।" भद्रकापिलानी पति की बात सुनकर रोने लगी और बोली—"प्राणनाथ ! आप क्या कह रहे हैं ? पर मैं आप की दासी हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अस्तु, जो आज्ञा।" यह कहकर उसने पिप्पल की प्रदक्षिणा कर वाम दिशा का मार्ग ग्रहण किया और पिप्पल दक्षिण के मार्ग से आगे बढ़ा। उस मार्ग से पिप्पल बहुत दूर नहीं गया था कि मार्ग में पीपल के एक पेड़ के नीचे उसे भगवान बुद्धदेव अपने कुछ भिक्षुओं के साथ बैठे हुए मिले। पिप्पल भी जाकर अश्वत्थ के नीचे भगवान् के पास बैठ गया और उनके उपदेश सुनने लगा। भगवान् ने उसे धर्म, शील दान, संतोष, ब्रह्मचर्य्य आदि का उपदेश दिया जिसका प्रभाव उस पर इतना पड़ा कि उसने उसी समय भगवान् की शरण लेकर प्रव्रज्या ग्रहण की और वह संतोष में एतदग्र हुआ। यही महाकाश्यप सूत्रपिटक का आचार्य्य हुआ।

(१८) चतुर्थ चातुर्मास्य

तृतीय चातुर्मास्य के विगत हो जाने पर इसी साल भगवान् बुद्धदेव को लिछिवी के महाराज की प्रार्थना से वैशाली जाना पड़ा।

राजगृह की उत्तर दिशा में गंगा के बाएँ किनारे पर वैशाली का राज्य था। वहाँ उस समय लिछिवी राजवंश का अधिकार था। वह राज उस समय बड़ा ही समृद्धिशाली था। पर उन दिनों जब भगवान् बुद्धदव राजगृह में ठहरे हुए थे, तब वैशाली में घोर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे प्रजा बहुत दुखी हुई। दुर्भिक्ष रोग से पीड़ित प्रजा पर जनक्षयकारी अहिवात रोग फैला जिससे सारे राज्य की प्रजा व्याकुल हो गई। लिछिवी महाराज को प्रजा की यह दशा देख बड़ी चिंता हुई। वे व्याकुल हो गए और अपने मन्त्रियों को बुलाकर दुर्भिक्ष और अहिवात रोग के निवारणार्थ उपाय पूछने लगे। मंत्रियों में से इस आपत्ति के निवारणार्थ किसी ने पूरणकश्यप को, किसी ने मस्करीगोशाल को, किसी ने निर्ग्रंथ-नाथपुत्र को, किसी ने अजित केशकंबल को, किसी ने ककुधकात्यायन को और किसी ने संजय वेलस्थिपुत्र को बुलाने के लिये कहा *। इसी बीच में किसी

---

* महात्मा बुद्धदेव के समय में उनके अतिरिक्त छः और संघोधक मगध के आस पास अपने सिद्धांत का प्रचार कर रहे थे। उन संघोधकों को बौद्धग्रंथों में तीर्थंकर लिखा है और उनका नाम पूरणकश्यप आदि कहा गया है। [१] पूरणकश्यप का पिता ब्राह्मण और माता विजातीया थी। वह पहले कहीं दरबान था और वहीं उसे वैराग्य उत्पन्न

ने गौतम बुद्ध का नाम लिया और कहा कि आज कल वे महाराज बिंबसार के यहाँ राजगृह के वेणुवन विहार में भिक्षुसंघ के साथ ठहरे हैं। राजा ने बुद्धदेव को ऐसे समय में आमंत्रित करना उचित समझा और महाराज बिंबसार के पास उन्हें बुलाने के लिये अपने मंत्री को भेजा। महाराज बिंबसार ने बड़ी धूमधाम से महात्मा बुद्धदेव को वैशाली भेजा और गंगा के तट तक वे स्वयं उनके साथ गए। वैशाली के लिछिवी महाराज उधर गंगा के तट तक उन्हें लेने के लिये आए। गंगा पार करते ही उन्हें बड़े गाजेबाजे के साथ ले कर वे अपनी राजधानी वैशाली को लौटे। कहते हैं कि वैशाली में

हुआ। वह वहां से भागकर जंगल की ओर चला। मार्ग में डांकुओं ने उसके वस्त्र छीन लिए। वह नंगा एक गांव में गया। गांववालों ने उसे कपड़ा देना चाहा, पर उस ने यह कह कर वस्त्र का तिरस्कार कर दिया कि लज्जा की निवृत्ति के लिये ही वस्त्र की आवश्यकता पड़ती है। पाप से लज्जा होती है। निर्धूतपाप के लिये वस्त्र की आवश्यकता नहीं। वह नंगा रहता था। उसके पांच सौ शिष्य थे और अस्सी हजार मनुष्य उसके अनुयायी थे। [२] मस्करीगोशाल को मंखलीगोसाल भी कहते हैं। वह गोशाल का पुत्र था जो एक दासी से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि वह अपने सिर पर अपने स्वामी का घी लेकर कहीं जा रहा था। मार्ग में पैर फिसलने से गिर पड़ा। वह भय से भागा, पर स्वामी ने उसके वस्त्र छीन लिए। वह नंगा जंगल में भाग गया और विरक्त हो गया। उसके भी पांच सौ शिष्य और अस्सी हजार अनुयायी थे। [३] अजित केशकंबल, किसी पुरुष के यहां नौकर था और वहीं उसे विराग हुआ था। वह सिर मुंड़ाता

महात्मा बुद्धदेव के पदार्पण करते ही बड़ी वृष्टि हुई और प्रजा के सब कष्ट दूर हो गए। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने रत्नसूत्र का उपदेश किया और पंद्रह दिन महाराज के अतिथि रहकर वे राजगृह को लौट गए और वहीं उन्होंने अपना चतुर्थ चातुर्मास्य व्यतीत किया।

और बाल का कंबल पहनता था। उसके मत से हिंसक और खादक समान पापी थे और वह लताछेदन को प्राणिवध के समान ही दूषित मानता था। [४] ककुध कात्यायन एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र था। ककुध वृक्ष के नीचे उसका जन्म हुआ था, इसलिये उसे लोग ककुध और कात्यायन गोत्री ब्राह्मण के पालने से उसे कात्यायन कहते थे। अपने पालक कात्यायन ब्राह्मण के मरने पर उसने संन्यास ग्रहण किया था। उसका मत था कि शीतल जल में अनेक जीव रहते हैं, अतः जल को बिना उष्ण किए व्यवहार में नहीं लाना चाहिए। शीतल जल के व्यवहार से हिंसा दोष होता है। [५] संजय के शिर में संजय वा कपित्थ के फल के समान बनौरी थी, इसलिये उसे लोग संजय कहते थे। वह वेलास्थि नामक दासी का पुत्र था। उसका मत था कि इस जन्म में जिस प्राणी में जो भाव विद्यमान रहता है, ठीक वही भाव लेकर वह दूसरा जन्म ग्रहण करता है। [६] निर्ग्रंथ--नाथपुत्र नाथ नामक एक कृषक का पुत्र था। उसके पांच सौ शिष्य थे। जैनियों का कथन है कि पार्श्वनाथ के अनुयायी को नाथपुत्र कहते हैं।

(१६) कपिलवस्तु-गमन और पंचम चातुर्मास्य

चतुर्थ चातुर्मास्य राजगृह में व्यतीत कर भगवान् बुद्धदेव भ्रमण के लिये अपने संघ समेत राजगृह से रवाना हुए और वैशाली की ओर गए। वहाँ वे वैशाली नगर से थोड़ी दूर पर कूटागार में ठहरे। उनके आगमन का समाचार पा लिछिवी महाराज अपने इष्ट मित्रों समेत उनके दर्शन के लिये पधारे और उनके उपदेश सुनकर उन्होंने अपनी आत्मा को शांत किया। महाराज ने वहीं उनसे अगामी चातुर्मास्य वैशाली में व्यतीत करने के लिये प्रार्थना की और भगवान् ने उनका निमंत्रण स्वीकार किया।

कूटागार में एक मास रहने पर उन्हें समाचार मिला कि महाराज शुद्धोदन बीमार हैं और उनकी कामना है कि वे अंतिम बार अपने प्रिय पुत्र बुद्ध को देख लें। बुद्धदेव ने यह समाचार पाते ही पाँच सौ भिक्षुओं को साथ ले वैशाली से कपिलवस्तु की राह ली और कपिलवस्तु पहुँचकर उन्होंने न्यग्रोधाराम में आसन लिया। वहाँ से वे कपिलवस्तु में महाराज शुद्धोदन के राजमहल में उन्हें देखने के लिये पधारे और महाराज को अपने अमूल्य उपदेश सुना कर उन्होंने उनकी आत्मा को शांति प्रदान की। तीसरे दिन महाराज शुद्धोदन इस असार संसार को त्याग परलोक सिधारे। बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से अपने पिता का अग्नि-संस्कार किया और शास्त्रानुसार उनकी अंत्येष्टि क्रिया की। इस बीच में जब तक वे कपिलवस्तु में रहे, अपनी विमाता महाप्रजावती और अन्य शाक्य

परिवार और बंधुओं को अपने उपदेश से शांति प्रदान करते रहे और उन्हें दान, शील, धर्म, ब्रह्मचर्य्यादि का उपदेश देते रहे। उनके उपदेश सुनकर उनकी विमाता महाप्रजावती और अन्य शाक्य स्त्रियों ने ब्रह्मचर्य्य ग्रहण करने और भिक्षुणी होने के लिये अपनी इच्छा प्रकट की। पर भगवान् ने उन्हें यह कहकर टाल दिया कि ब्रह्मचर्य्य का पालन स्त्रियों के लिये गृहत्याग की अवस्था में अत्यंत कठिन है। वे बिचारी निराश हो रोती हुई रह गईं।

थोड़े दिन कपिलवस्तु में रहकर और शाक्यों को सांत्वना देकर भगवान् बुद्धदेव अपने संघ समेत वैशाली को रवाना हुए। कई सप्ताह में मार्ग चलकर वे वैशाली पहुँचे। उन्हें वहाँ पहुँचे बहुत दिन न हुए थे कि प्रजावती गौतमी पाँच सौ शाक्य स्त्रियों को लेकर नंगे पाँव कपिलवस्तु से राह के कष्ट झेलती हुई वैशाली पहुँची। पर भगवान् ने उसे कपिलवस्तु ही में प्रव्रज्या ग्रहण करने का निषेध कर दिया था, इसलिये उसे फिर उनके पास जाने का साहस न होता था। निदान वह थकी हुई एक वृक्ष के नीचे अपनी साथिनियों समेत बैठ कर रो रही थी कि अचानक आनंद, जो कहीं से आ रहा था, उन्हें मिल गया। आनंद ने प्रणाम कर महाप्रजावती से वहाँ आने और बैठकर रोने का कारण पूछा। प्रजावती ने रोकर कहा—"आनंद! मैंने कुमार से कपिलवस्तु में ब्रह्मचर्य्य पालन और प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी, पर उन्होंने मुझे प्रव्रज्या देने से इन्कार कर दिया था। पर मुझे संसार से विराग हो गया है। सारा जगत्

मुझे दुःखमय जान पड़ता है। मैं विवश होकर कपिलवस्तु से इतनी शाक्य स्त्रियों को साथ लेकर प्रव्रज्या लेने के संकल्प से यहाँ आई हूँ। पर मुझे कुमार के पास जाकर फिर प्रार्थना करते डर मालूम होता है कि कहीं वे फिर अस्वीकार करें। इसी लिये मैं यहाँ बैठी अपने भाग्य को रो रही हूँ। आनंद उन्हें धैर्य्य दे कर महात्मा बुद्धदेव के पास गया और वहाँ उसने प्रजावती के आने का समाचार कह सुनाया। महात्मा बुद्धदेव ने पहले तो इन्कार किया और कहा कि स्त्रियों कि प्रव्रज्या का सदा निषेध है। ब्रह्मचर्य्य बहुत कठिन है। जब पुरुष उसके पालन करने में असमर्थ हैं, तब स्त्रियों से क्या आशा की जा सकती है। पर आनंद के बहुत कुछ कहने सुनने पर उन्होंने महाप्रजावती को अष्टांगिक * धर्म स्वीकार करने के लिये कहा और उसे वचन दिया कि इनके स्वीकार करने पर वे संघ में ली जा सकती हैं। आनंद महात्मा बुद्धदेव की आज्ञा पा हँसता

---

* भिक्षुणी के अष्टांगिक धर्म ये हैं। [१] भिक्षुणी को, यदि वयोवृद्धा हो तो भी, नवीन और युवक भिक्षु की भी प्रतिष्ठा करना। (२) जहां भिक्षु न हों, ऐसे शून्य स्थान में चातुर्मास्य न करना। [३] पूर्णिमा और अमावास्या के दिन भिक्षुओं से उपदेश सुनना। [४] चातुर्मास्य के अंत में भिक्षुओं के साथ संकल्प--निवृत्ति करना। (५) प्रति वर्ष संघ के समक्ष पापदेशना करना। [६] भिक्षुणी होनेवाली स्त्रियों को दो वर्ष तक अपने सामने स्वधर्म की शिक्षा देकर उन्हें भिक्षुणी बनाने के लिये भिक्षु और भिक्षुणियों के संघ में उपस्थित करना। [७] भिक्षुओं की निंदा वा उन पर कटाक्ष न करना। [८] भिक्षुओं के उपदेश के अनुसार चलना।

हुआ महाप्रजावती के पास आया और उन्हें लेकर भगवान् बुद्ध-देव के पास पहुँचा। वहाँ महात्मा बुद्धदेव ने उससे अष्टांगिक धर्म के पालन की प्रतिज्ञा करने के लिये कहा जिसे उसने सहर्ष स्वीकार किया और वह अपनी साथिनियों समेत भिक्षुणी बनाई गई। यह महाप्रजावती पहली स्त्री थी जिसने उपसंपदा ग्रहण की।

महात्मा बुद्धदेव ने अपना पंचम चातुर्मास्य वैशाली नगर के पास कूटाराम में व्यतीत किया और वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने पर उन्होंने कार्तिक मास में राजगृह को प्रस्था किया।

---

(२०) छठा चातुर्मास्य

राजगृह पहुँचकर वे वेणु वन में ठहरे। इस वर्ष वे राजगृह के आसपास ही उपदेश करते रहे। इसी वर्ष उन्होंने महाराज बिंबसार की पट्टमहिषी क्षेमा को उपसंपदा ग्रहण कराई। यह क्षेमा शाकल्य-नगर के राजकुल में उत्पन्न हुई थी और बड़ी रूपवती थी। एक दिन वह अपने उद्यान में जो वेणुवन के पास था, विहार करने गई थी। वहाँ से लौटते समय वह वेणुवन में गई। वहाँ भगवान् बुद्धदेव के उपदेश सुनकर क्षेमा को विराग उत्पन्न हो गया और उसने महाराज बिंबसार की आज्ञा लेकर उपसंपदा ग्रहण की।

उसी वर्ष अनेक स्त्रियों ने उपसंपदा ग्रहण की जिनमें महा-कश्यप की स्त्री भद्रकापिलानी, धर्मदीना, नंदमात, उत्तरा, उपनंदा और राहुल-माता यशोधरा मुख्य थीं।

उसी वर्ष भगवान् ने आनंद के योग-विभूति प्रदर्शन पर सदा के लिये भिक्षुसंघ को योग की विभूतियाँ दिखलाने से वारित किया। इसके बाद तीर्थंकरों ने जब यह सुना कि बुद्धदेव ने अपने संघ को विभूति-प्रदर्शन करने से मना किया है, तब उन लोगों ने बार बार भगवान् बुद्धदेव को योग-विभूति दिखलाने के लिये आह्वान किया। जब महात्मा बुद्धदेव ने उनके आह्वान को अस्वीकार किया तब, वे लोग अनेक प्रकार की निंदा और परीवाद करने लगे।

उस वर्ष भगवान् ने राजगृह के पास मुकुल नामक पर्वत पर अपना छठा चातुर्मास्य बिताया और फिर वे राजगृह के वेणुवन में आ विराजे।

---

(२१) सातवाँ चातुर्मास्य

वेणुवन में आने पर महाराज बिंबसार ने उनसे निवेदन किया— "महाराज ! आपके योग-विभूति-प्रदर्शन वर्जित करने से अन्य तीर्थंकरों ने संसार में बहुत प्रकार का प्रवाद फैला रखा है और वे लोग आपको पाखंडी प्रसिद्ध कर रहे हैं।" महाराज ने उनसे एक बार योग-विभूति-प्रदर्शन करने के लिये आग्रह किया, जिस पर उन्होंने आगामी आषाढ़ पूर्णिमा के दिन उत्तर कौशल में विभूति-प्रदर्शन करना स्वीकार किया।

उसी वर्ष श्रावस्ती का एक वैश्य जिसका नाम सुदत्त था, राजगृह में आया और उसने महात्मा बुद्धदेव के उपदेश सुन उनका धर्म ग्रहण किया। उसने चलते समय भगवान् से श्रावस्ती पधारने के लिये प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया और चातुर्मास्य के समीप पधारने का वचन दिया।

सुदत्त ने श्रावस्ती पहुँचकर भगवान् के संघ के लिये वहाँ ज्येष्ठ कुमार का आराम मोल ले वहाँ जेतवन नामक विहार बनवाया और राजगृह से श्रावस्ती तक एक एक योजन पर धर्मशालाएँ और प्याऊ बनवाए। वसंत ऋतु के आगमन के समय सुदत्त स्वयं भगवान् बुद्धदेव को लाने के लिये फिर राजगृह गया और वहाँ से उन्हें संघ समेत लेकर आषाढ़ मास के अंत में श्रावस्ती पहुँचा।

यहाँ उनके साथ साथ पुराणकश्यप, मस्करीगोशाल आदि तीर्थंकर भी श्रावस्ती आए। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन बुद्धदेव अपना भिक्षापात्र लेकर आनंद के साथ श्रावस्ती में गए और भिक्षा ले कर जब वे नगर के द्वार पर पहुँचे, तब महाराज का एक प्रधान

माली उनसे मिला और उसने एक पका आम उन्हें भेंट किया। इस आम को भगवान् ने वहीं लेकर खा लिया और बीज वहीं फेंक दिया। कहते हैं कि वह आम का बीज उसी समय उग गया और देखते देखते बढ़कर वृक्ष होकर फल गया। भगवान् वहाँ से उठकर जेतवन विहार में आए। इसके बाद ही आँधी आई और पानी बरसा। आँधी पानी के निवृत्त होने पर महात्मा बुद्धदेव ने आम्रवन में सब लोगों को युग्म-प्रतिहार नामक योग-लीला दिखा कर अपना विराट् स्वरूप दिखाया और एक पैर युगंधर पर्वत पर रखकर और दूसरा पैर त्रयस्त्रिंश नामक स्वर्ग में रखकर वे वहा से अंतर्धान हो गए। कहते हैं कि उस वर्ष भगवान् ने त्रयस्त्रिंश नामक देवलोक में अपना चातुर्मास्य किया और अपनी माता मायादेवी को, जिसने इस संसार को छोड़ने पर वहाँ जन्म-ग्रहण किया था, अभिधर्म का उपदेश किया।

(२२) आठवाँ चातुर्मास्य

जब चातुर्मास्य अंत होने को आया तब सारिपुत्र और मौद्गलायन भगवान् बुद्धदेव के पास त्रयस्त्रिंश में गए और उन्होंने उनसे फिर संसार में पधारने के लिये कहा। भगवान् ने उनसे कहा कि अब हम संकाश्य नगर में उतरेंगे। तदनुसार भगवान् आश्विन पूर्णिमा के दिन संकाश्य नगर के दक्षिण द्वार के पास उतरे।

संकाश्य नगर से वे श्रावस्ती आए। वहाँ जेतवन विहार में रह कर वे धर्मोपदेश करने लगे। सहस्रों मनुष्य नित्य धर्मोपदेश सुनने आने लगे। यह देख अन्य तीर्थंकरों को बड़ी डाह हुई और वे लोग बुद्धदेव को अपमानित करने के प्रयत्न में लगे। एक दिन उन लोगों ने संध्या के समय चिंचा नाम की एक स्त्री को भगवान् बुद्धदेव के पास उपदेश सुनने के लिये भेजा। तब से वह बराबर कई दिन तक लगातार उपदेश सुनने जाती रही। तीन मास बाद उन्होंने चिंचा से यह खबर उड़वा दी कि मुझे महात्मा बुद्धदेव से गर्भ रह गया है और इस प्रकार महात्मा बुद्धदेव के चालचलन पर लांछन लगाने की चेष्टा की। उन लोगों ने चिंचा को गौतम बुद्ध के पास भेजा। उसने भगवान् बुद्धदेव के पास जाकर कहा—"महाराज मुझे, आपके संसर्ग से गर्भ रह गया है, आप इसका प्रबंध कीजिए।" गौतम को चिंचा की बात सुन अत्यंत विस्मय हुआ और उन्होंने कहा—"चिंचा! तू क्यों झूठ कह रही है? तू झूठी है। सत्य का परित्याग करा मिथ्या बोलनेवाला, जिसे परलोक का भय नहीं है, कौन सा पाप नहीं कर

सकता।" * अंत को यही हुआ। उसका सारा आरोप मिथ्या प्रमाणित हुआ और महात्मा बुद्धदेव का नाम और आदर और भी बढ़ गया। तीर्थंकर लोग अपने किए पर लज्जित हुए।

श्रावस्ती से चलकर भगवान् बुद्धदेव शिंशुमारगिरि पर गए। वहाँ नकुलपिता और नकुलमाता नाम के ब्राह्मण दंपती रहते थे। वे दोनों महात्मा बुद्धदेव को आते देख दौड़े और उन्हें पकड़कर अपना ज्येष्ठ पुत्र कहकर रोने लगे और बड़े आदर से अपने घर ले गए। उन लोगों ने अपने पुत्रों से उन्हें मिलाया और कहा कि यह तुम्हारे बड़े भाई हैं। भगवान् ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया।

जब शिंशुमारगिरि के राजा बोधिकुमार को भगवान् बुद्धदेव के आगमन की सूचना मिली, तब उसने भगवान् बुद्धदेव को अपने नवीन घर में जिसे उसने बनवाया था, गृह-प्रवेश के अवसर पर आमंत्रित किया। कहते हैं कि उसने अपने राज्य में अपने एक वास्तु-विद्या-विशारद बढ़ई से, जिसका नाम चित्रवर्धकी † था, एक नवीन काष्ठ गृह बनवाया था। गृह-प्रवेश के समय राजा की रानियों ने पुत्र

---

* एकं धम्मं अतीतस्स मुसवादिस्स जंतुना
बितियणापरलोकस्स नत्थिपापं अकारियं।

† कहते हैं कि घर बनने पर राजा ने चित्रवर्धकी के प्राण लेने का इसलिये विचार किया था जिससे कि वह फिर वैसा दूसरा घर न बनावे। इसका पता पा चित्रवर्धकी एक गरुड़ बना अपने परिवार समेत उस पर चढ़ उत्तर पर्वत को भाग गया और वहाँ काष्ठवाह नामक नगर बनाकर रहने लगा।

उत्पन्न होने की इच्छा से मार्ग में अपने वस्त्र इसलिये बिछवा दिए कि भगवान् उन वस्त्रों पर से होकर जायँगे और उनके प्रसाद से उन्हें पुत्रलाभ होगा। पर भगवान् ने राज-प्रसाद में जाते समय उन वस्त्रों पर पैर नहीं रखा और उन्हें हटवाकर वे भीतर गए। वहाँ भोजन कर उन्होंने राज-परिवार को अनेक धर्मोपदेश किए और रानियों को उनके पुनर्जन्म का हाल बतला कर कहा—

अत्तानं चे पियं जन्या रक्खेय्य नं सुरक्खितं।

तिन्न मन्यतरं यामं परिजग्गेय पण्डित।

यदि आत्मा प्रिय जानते हो तो इसे सुरक्षित रखो और तीन पहर में कभी न कभी पंडित होकर इसके शुभ के लिये चिंतन और प्रयत्न किया करो।

शिशुमारगिरि के महाराज के अनुरोध से भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्यों समेत उस वर्ष वर्षा ऋतु में वहीं रहे और वहीं उन्होंने अपना आठवाँ चातुर्मास्य किया। वे चार महीने तक वहाँ के लोगों को और संघ के लोगों को उपदेश करते रहे। वर्षा का अंत होने पर वे वहाँ से फिर श्रावस्ती चले आए।

---

(२३) नवाँ चातुर्मास्य

कोशांबी नगरी में जहाँ का राजा उस समय उदयन * था, कुक्कुट, गोशित और पावरिक नाम के तीन वैश्य रहते थे। ये तीनों अत्यंत श्रीसंपन्न, उदारचरित, आस्तिक तथा दानशील थे। ये लोग साधुओं की बड़ी सेवा और सत्कार करते थे और अनेक साधु संन्यासी इनके यहाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया करते थे। जिस समय भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती में विराजमान थे, उस समय अनेक संन्यासियों को उनका सुयश सुनकर उनके दर्शन की उत्कंठा हुई। पर वे लोग चातुर्मास्य आ जाने से कौशांबी में उन्हीं वैश्यों के यहाँ रुक गए और श्रावस्ती आकर भगवान् बुद्धदेव के दर्शन न कर सके। चातुर्मास्य के काल में उन लोगों ने एक दिन कुक्कुट, गोशित और पावरिक से महात्मा बुद्धदेव के चरित का वर्णन किया जिसे सुनकर उन लोगों को भी बुद्धदेव के दर्शन की आकांक्षा हुई। वे लोग इस चिंता में लगे कि यदि भगवान् हमारी प्रार्थना स्वीकार करें तो हम लोग उन्हें आगामी वर्षा में कौशांबी में चातुर्मास्य व्यतीत करने के लिये आमंत्रित करें। यह विचार कर उन लोगों ने गोशिताराम, कुक्कुटाराम और पावरिकाराम नामक तीन आराम कौशांबी में अपने अपने नाम से बनवाए और तैय्यार हो जाने पर

---

* यह वही उदयन है जिसने मालवा देश जीतकर वहां उदयिनपुरी बसाई थी जो उज्जयिनीपुरी या उज्जैन कहलाती है और जिसके विषय में कालिदास ने अपने मेघदूत में लिखा है—प्राप्यावंती उदयन कथा कोविद-ग्रामवासी। वह कुरुवंशी राजा परीक्षित के वंश का था।

- उनके आमंत्रण के लिये तैयारी कर के अनेक खाद्य द्रव्य छकड़े पर लादकर वे चातुर्मास्य आने के पूर्व ही वसंत ऋतु में श्रावस्ती को रवाना हुए।

भगवान् बुद्धदेव शिंशुमार में अपना चातुर्मास्य व्यतीत कर वहां से श्रावस्ती आए और वहाँ दस पाँच दिन रहकर पश्चिम दिशा में कुरुपांचाल की ओर चले गए। एक दिन वे कर्मासदम्म नामक गाँव में प्रातःकाल गए। उस गाँव में मागंधय नामक एक ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मण की एक अति रूपवती कन्या थी जिसका नाम मागंधी था। ब्राह्मण सदा इस चिंता में रहता था कि यदि कोई रूपवान विद्वान् ब्राह्मण वा क्षत्रिय मिले तो वह उसके साथ अपनी उस परम रूपवती कन्या का विवाह कर दे। जब भगवान् बुद्धदेव उस ब्राह्मण के गाँव से होकर प्रातःकाल निकले तो मागंधय ब्राह्मण ने जो उस समय शौच को जा रहा था, उन्हें स्नातक जान प्रणाम कर गाँव के बाहर ठहरने के लिये उनसे प्रार्थना की और वह भागा हुआ अपनी स्त्री के पास गया। उसने हर्ष से अपने स्त्री से कहा—"लो, ईश्वर ने घर बैठे मनोरथ पूरा कर दिया। अभी एक स्नातक इस गाँव में आया है। मैं शौच को जाता था; दैवयोग से वह गाँव के बाहर मिला। वह अत्यंत रूपवान है। चलो देख लो, मुझे आशा है कि तुम भी उसे देखकर पसंद करोगी। मागंधी को भी साथ लेती चलो। यदि हो सके तो आज ही मागंधी का उसके साथ पाणिग्रहण करा दें।" उसकी स्त्री उसकी बात सुन अपनी कन्या के साथ चटपट चलने को तैयार हो गई और तीनों उस स्थान पर

गए, जहाँ ब्राह्मण भगवान् बुद्धदेव को ठहराकर घर गया था। पर इसी बीच में बुद्धदेव वहाँ से थोड़ी दूर चलकर आगे एक वृक्ष की छाया में जाकर बैठ गए थे। जब वे तीनों वहाँ पहुँचे तब वहाँ उनके पद-चिह्न के सिवाय और कुछ न था। ब्राह्मणी जो सामुद्रिक-शास्त्र की पंडिता थी, उनके पद-चिह्नों को जो मार्ग में अङ्कित हो गए थे, देखकर कहने लगी—"ब्राह्मण! यह तो चक्रवर्ती राजा वा परिव्राट् बुद्ध के पैरों के चिह्न हो सकते हैं। भला हमारा ऐसा भाग्य कहाँ जो ऐसे पुरुष को अपना जमाई बनावें। ऐसे महापुरुषों के तो दर्शन ही बड़े भाग्य से हुआ करते हैं।" अब तीनों उनके पैरों के चिह्नों को देखते हुए आगे बढ़े और थोड़ी दूर चलकर उस वृक्ष के नीचे पहुँचे जहाँ भगवान् बुद्धदेव योगासन मारे बैठे थे। उन्हें देख ब्राह्मण मारे हर्ष के गद्गद हो गया और अपनी स्त्री के साथ वहाँ बैठ उसने कुशोदक ले कन्या को भगवान् बुद्धदेव को समर्पण करना चाहा। पर भगवान् बुद्धदेव ने उससे हँसकर कहा—

दिस्वान तण्हं हरतिं रकिंच
न होसि छंदो अपि मेथुनस्मिं।
किमेविदं मुत्तकरीसपुण्णं
पादायितं संफुसितुं न इच्छे॥

"हे ब्राह्मण! मार की तृष्णा, आरति और रति नाम की तीनों कन्याओं को देखकर जब मुझे इच्छा न हुई तो इस मूत्रपुरीष से पूर्ण मागंधी को तो मैं पैर से भी स्पर्श करना नहीं चाहता।"

मागंधी तो यह बात सुन मन ही मन जल भुनकर रह गई, पर ब्राह्मण के हृदय पर इसका प्रभाव पड़ा। वह समझ गया कि यह कोई महापुरुष हैं जो इस प्रकार स्त्री-रत्न का तिरस्कार कर रहा है। उसने भगवान् से पूछा–" हे भगवन् ! आप इस प्रकार सर्व लक्षणयुक्त नारी–रत्न का जिसकी बड़े बड़े राजा चाहना करते हैं, तिरस्कार करते हैं। दार-परिग्रह की महिमा शास्त्रों में वर्णन की गई है। फिर आप यह बतलाइए कि शीलव्रताननुजीवी पुरुषों की कैसे भवोत्पत्ति होती है ?" भगवान ने कहा—"हे मागंधिय ! सांसारिक लोगों की न तो धर्म में प्रवृत्ति होती है और न वे यथेच्छ आध्यात्मिक शांति लाभ कर सकते हैं। आध्यात्मिक शांति न दृष्टि से, न श्रुति से और न ज्ञान से प्राप्त होती है। शीलव्रत भी आध्यत्मिक शुद्धि नहीं दिला सकता। पर इतने से यह न समझना कि ये निरर्थक हैं और इनका त्याग करने से ही शुद्धि प्राप्त होती है। जब तक सम, विशेष और हीन का भाव बना रहता है तभी तक विवाह है। जिस मनुष्य को भेदभाव कंपित नहीं कर सकते, भला वह किससे विवाह करेगा। इस प्रकार जो भेदभाव-शून्य हो, गृहाश्रम त्याग कर विरक्त हो, संन्यास-ग्रहण कर लोक में विचरता हो, वही नाग वा अधिकारी है। वह कमल-पुष्प की तरह जल और पंक से उत्पन्न होने पर भी जल और पंक से लिप्त नहीं होता। वेदज्ञ पुरुष भी यदि दृष्ट और आनुश्राविक सुखों में अनुरक्त हो तो वह समान वा समाधि को नहीं प्राप्त कर सकता। किंतु वह दृष्ट और आनुश्राविक सुखों में तन्मय रहता है। ऐसे पुरुष को क्या कर्म और क्या श्रुति

त्रिविध भेदों से पृथक् कर सकती है ? संज्ञारहित और प्रज्ञारहित पुरुष को शांति नहीं मिलती। संज्ञा और दृष्टि को जिसने वशीभूत कर लिया है, वही पुरुष संसार में न लिप्त होकर घटी यंत्र की तरह निर्मनस्क फिरता है और कर्म करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता।"

इस प्रकार मागंधिय ब्राह्मण को उपदेश कर भगवान् बुद्धदेव वहाँ से आगे बढ़े। दैवयोग से इस घटना के थोड़े ही दिन बाद, कौशांबी महाराज उदयन उस गाँव में आए और मागंधी का रूप-लावण्य देख उसे ब्याहकर वे कौशांबी पुरी को सिधारे।

भगवान बुद्धदेव देशाटन से वसंत ऋतु में फिर श्रावस्ती गए और उनके पहुँचने के बाद ही कुक्कुट, गोशित और पावरिक अपनी भेंट की सामग्री लिये श्रावस्ती में पहुँचे और भगवान् बुद्धदेव के पास उन साधुओं के साथ जिनसे उन्हें समाचार मिला था, जाकर उनका उपदेश श्रवण किया। कई दिन रहकर उन्होंने भगवान् से कौशांबी में नवम चातुर्मास्य करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने उनका निमंत्रण स्वीकर किया और वे लोग उन्हें प्रणाम कर कौशांबी को सिधारे।

वर्षा ऋतु के आगमन के समीप भगवान बुद्धदेव अपने पाँच सौ शिष्यों सहित कौशांबी पधारे और उन्होंने कुक्कुटाराम में निवास किया। वहाँ एक मास तक वे उन तीनों श्रेष्ठों के अतिथि रहे, फिर नगरवासियों के यहाँ भिक्षा करने लगे।

महाराज उदयन की तीन रानियाँ थीं—वासवदत्ता, श्यामावती

और मागंधी । उनमें मागंधी कनिष्ठा थी । वासवदत्ता पांचालराज की कन्या थी और श्यामावती एक वैश्य की पुत्री थी। उन तीनों में महाराज का श्यामावती पर अधिक प्रेम था। श्यामावती की एक दासी खुज्जुहारा नाम की थी । एक दिन भगवान् एक माली के घर, जिसके यहाँ से राजप्रासाद में फूल जाया करते थे, भिक्षा के लिये गए । माली ने भगवान् को ससंघ बड़े प्रेम से भिक्षा दी और उनके सदुपदेशों को श्रवण किया । दैवयोग से भगवन् के उपदेश के समय श्यामावती की दासी खुज्जुहारा भी वहाँ उपस्थित थी। भगवान् के उपदेश का प्रभाव उस दासी पर भी पड़ा । उस दिन वह फूल लेकर देर से राजमहल में गई । श्यामावती ने उससे देर से आने का कारण पूछा तो उसने साफ साफ कह दिया—"मैं जब माली के घर फूल लेने गई, तब भगवान् बुद्धदेव वहाँ भिक्षा के लिये पधारे थे। मैं उनका उपदेश सुनने लगी, इसी कारण मुझे आज देर हो गई"। जब रानी ने फूल देखे तो नित्य से उसे द्विगुण फूल दिखाई पड़े। महारानी ने हँसी से पूछा—"आज तू क्यों अधिक फूल लाई है ?" खुज्जुहारा ने हाथ जोड़कर कहा—"महारानी की जय हो, नित्य मैं मूल्य का आधा स्वयं ले लेती थी, पर आज मैं कुल मूल्य का फूल लाई हूँ। मैंने आज से भगवान् बुद्धदेव का उपदेश सुन यह प्रतिज्ञा की है कि अब चोरी, असत्य भाषण, हिंसा आदि न करूँगी । उन्हीं के उपदेश-रत्नों का यह फल है।" श्यामावती को यह सुन भगवान् बुद्धदेव पर श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने अपने मन में कहा—"जिस महापुरुष के उपदेश से लोगों

की दशा में अलौकिक परिवर्तन होता है, वह महापुरुष अवश्य दर्शनीय और पूजनीय हैं।" यह विचार उसने अपनी दासी से भगवान् के सारे उपदेशों को जो उन्होंने माली के यहाँ दिए थे, शब्द प्रति शब्द सुना और उसे उनके दर्शनों की विशेष उत्कंठा हुई। उसने अपनी दासीसे पूछा—"भगवान् बुद्धदेव किस मार्ग से भिक्षा के लिये नगर में आया जाया करते हैं?" और जब उसे यह ज्ञात हुआ कि भगवान् उसके महल के नीचे से होकर भिक्षा के लिये नगर में आते जाते हैं, तब उसने अपने प्रासाद की दीवार में उनके दर्शन के लिये एक रंध्र बनवाया और वह उसमें से नित्य प्रति भगवान् के दर्शन करने लगी।

एक दिन दैवयोग से मागंधी, जो भगवान् बुद्धदेव के तिरस्कार करने से उनसे मन ही मन जलती थी, श्यामावती के प्रासाद में गई। वहाँ इधर उधर घूमते हुए उसकी दृष्टि उस रंध्र पर पड़ी जिसे श्यामावती ने भगवान् बुद्धदेव के दर्शन के लिये बनवाया था। मागंधी ने श्यामावती से पूछा—"बहन, यह रंध्र किस लिये है?" श्यामावती ने कहा—"यह रंध्र मैंने भगवान् बुद्धदेव के लिये बनाया है और जब भगवान् इस मार्ग से जाते हैं, तब मैं उनके दर्शन करती हूँ।" यह सुन मागंधी मौन हो गई और उसने अपने घर आ श्यामावती से सवतिया डाह निकालने का इसे एक अच्छा शस्त्र बनाया।

एक दिन जब महाराज उदयन मागंधी के महल में आए तब उसने श्यामावती की अनेक प्रकार से निंदा कर के कहा—"महा-

राज ! जिस श्यमावती पर आप इतने मुग्ध हैं, उसने अपने जार से वार्तालाव करने के लिये अपने महल में एक रंधू बना रखा है। मैंने उस रंधू को स्वयं अपनी आँखों से देखा है; और जब मैंने उससे रंधू बनाने का कारण पूछा तब वह भौचक्की सी रह गई। आपको यदि मेरी वातों में आपत्ति हो तो आप स्वयं श्यामावती के महल में जाकर देख लीजिए कि अमुक स्थान में रंधू है वा नहीं।" राजा यह सब सुन विस्मित होकर रह गया और मागंधी ने समझा कि अब मैं अपने प्रयत्न में सफलीभूत हो गई। एक को तो आज ले लिया, अब दूसरी वासवदत्ता रह गई। यदि हो सका तो किसी न किसी दिन उसका भी मान ध्वंस कर मैं अकेली महाराज की प्रेमपात्री महिषी बनूँगी।

दूसरे दिन जब महाराज उदयन श्यामावती के प्रासाद में गए तब उन्होंने उस स्थान पर जहाँ मागंधी ने बतलाया था, रंधू देखा। महाराज ने श्यामवती को बुलाकर रंधू का कारण पूछा तो उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैंने यह रंधू भगवान् के दर्शन के लिये बनवाया है और मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप भी ऐसे महापुरुष के दर्शन करें और एक दिन आप उन्हें निमंत्रित कर के भोजन कराने की मुझे आज्ञा दें। राजा को श्यामावती की यह स्पष्टवादिता बहुत रुची और उन्होंने तुरंत आज्ञा दी कि यहाँ एक खिड़की लगा दी जाय। उन्होंने श्यामावती को भगवान् बुद्धदेव को भिक्षा कराने की आज्ञा दी और श्यामावती ने बड़े उत्साह और हर्ष से भगवान को उनके संघ समेत एक दिन निमंत्रित करके

भोजन कराया। उस दिन महाराज उदयन भी श्यामावती के प्रासाद में उपस्थित रहे और भगवान् को सप्रीति भोजन करा के उन्होंने उनके उपदेश सुने।

यह सब समाचार सुनकर मागंधी और अधिक कुढ़ी और उसने कई लड़कों को लोभ देकर भगवान् बुद्धदेव और संघ के लोगों को जब वे नगर में भिक्षा के लिये निकलते थे, गाली दिलवाना आरंभ किया। यद्यपि गालियों से भगवान् बुद्धदेव को कुछ कष्ट न हुआ, पर उनके संघ के भिक्षुओं को बहुत दुःख पहुँचा। उनके दुःख से दुःखी हो आनंद ने एक दिन भगवान् से कहा—"महाराज! यहाँ के लोग बड़े दुष्ट हैं। यह लोग गाली देकर आपके भिक्षुओं का अपमान करते हैं। अतः अब यहाँ से अन्यत्र चलना चाहिए। चातुर्मास्य भी अब अंत को पहुँच गया है।" आनंद की यह बात सुन भगवान् बुद्धदेव ने कहा—

अहं नागोव संगामे चेपतो पतितं सरं।

अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो।

हे आनंद! संसार में चारों ओर दुःशील पुरुष हैं, तुम कहीं जाकर उनसे नहीं बच सकते हो। मैं तो हाथी की तरह, जैसे वह संग्राम में धनुष से निकले हुए बाणों को सहता है वैसे, इनके गाली-प्रदान को सहता हुआ अतिवाक्य की तितिक्षा करूँगा।

जब मागंधी गाली दिलाकर थक गई और महात्मा बुद्धदेव और भिक्षु वहाँ से न टले और उधर श्यामावती को राजा और भी चाहने लगे, तब उसने एक दिन वन्य कुक्कुट मँगवाकर महाराज

से कहा—"महाराज ! श्यामावती कुक्कुट का मांस बहुत अच्छा पकाती है।" महाराज ने उसकी बात सुन कुक्कुटों को श्यामावती के यहाँ भेज दिया और कहला दिया—"आज मैं वहाँ भोजन करूँगा। यह कुक्कुट श्यामावती मेरे लिये पकावे।" श्यामावती ने उस दिन अनेक प्रकार के व्यंजन महाराज के लिये बनाए और जब महाराज उदयन उसके घर में भोजन के लिये गए तो उसने सब कुछ परोसकर उनके आगे धरा। महाराज ने कुक्कुट का मांस न देख श्यामावती से पूछा कि कुक्कुट का मांस कहाँ है ? उसने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज आपके सब कुक्कुटों को मैंने छोड़ दिया। मैं जीवहिंसा न करूँगी। जैसा मुझे दुःख होता है, वैसे अन्य प्राणियों को भी होता है। फिर इस अधम पेट के लिये कौन बुद्धिमान् पुरुष प्राणिहिंसा करना उचित समझेगा ?" राजा को श्यामावती की बात बहुत अच्छी लगी और जो कुछ व्यंजन उनके सामने रखा था, उसीको खाकर वे अत्यंत संतुष्ट हुए।

अब तो मागंधी और जली। उसके दो दो प्रयत्न निष्फल गए। अब वह यह सोचने लगी कि किस प्रकार वह श्यामावती को राजा का कोपभाजन बनाए। अंत को उसने यह निश्चय किया कि अब श्यामावती पर महाराज के प्राण लेने का दोष लगाना चाहिए। यह दोष प्रमाणित होने पर महाराज उसके प्राण लिए बिना न छोड़ेंगे। यह विचारकर उसने एक नाग का बच्चा मँगवाया और जिस दिन राजा श्यामावती के यहाँ जानेवाले थे, उस दिन उनकी हस्तिस्कंधवीणा में उस नाग के बच्चे को भरकर श्यामावती के

यहाँ भेज दिया। जब राजा श्यामावती के यहाँ पधारे तो मागंधी उनके साथ वहाँ गई। बात ही बात में वह वीणा उठा उसके तार ठीक करने लगी। ज्योंही उसने वीणा की खूँटी मुरेड़ी, साँप का बच्चा जो उसमें छिपा था निकल पड़ा। मागंधी वीणा फेंककर उठ खड़ी हुई और श्यामावती से क्रुद्ध होकर बोली "अरे दुष्टा! यह तूने क्या किया?" महाराज भी उस साँप के बच्चे को देख चकित हो गए। अब तो मागंधी ने श्यामावती पर महाराज के प्राण लेने के लिये प्रयत्न करने का आरोप लगाया। श्यामावती ने बार बार कहा कि साँप को वीणा में डालना तो दूर रहा, मैं तो इसे जानती तक नहीं। पर वहाँ सुनता कौन था। महाराज क्रोध के मारे लाल हो गए और श्यामावती को बाण से वेधने के लिये उन्होंने स्वयं बाण चलाया। पर धन्य अहिंसा का माहात्म्य! वे बाण बराबर छोड़े जाते थे, पर श्यामावती के पास तक एक नहीं पहुँचता था *। निदान राजा ने श्यामावती का निर्दोष होना स्वीकार किया और उसकी सत्यता का प्रभाव देख वे उसकी शरण को प्राप्त हुए। पर श्यामावती ने कहा—"महाराज! आप भगवान् बुद्धदेव की

* बुद्धघोष ने धम्मपद की अर्थकथा में लिखा है कि राजा ने जब बाण चलाए तब बाण श्यामावती की ओर जाकर फिर लौट आए। उस समय राजा ने श्यामावती के पैर के पास बैठकर कहा था—

सम्मुय्हामि पमुय्हामि सब्बमुय्हंति मे दिसा।
सामावती मं तायस्सु त्वं च मे सरणं भव॥
इदं सुत्वा सामावती सम्मासम्बुद्धसाविका।

शरण को प्राप्त हों।" महाराज ने कहा-"श्यामावती। मैं तेरी और महात्मा बुद्ध दोनों की शरण हूँ।"

मागंधी इस घटना से भयभीत होकर भाग गई। पर वह शांत न रही और फिर एक दिन जब राजा कौशांबी से कहीं दूर चले गए थे, अवकाश पा उसने श्यामावती के प्रासाद के कपाट बंद करा के आग लगवा दी जिससे वह अपनी सखियों समेत जल कर नष्ट हो गई। जब राजा कई दिनों के बाद कौशांबी पहुँचे तो उन्हें श्यामावती के दहन का समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ। वे समझ गए कि यह सब करतूत मागंधी की है। इस पर उन्होंने मागंधी का इष्ट-मित्र सहित नाश कर दिया।

मा मं त्वं सरणं गच्छ यमहं सरणं गता ॥
स संबुद्धो महाराज एसबुद्धो अनुत्तरो ।
सरणं गच्छ तं बुद्धं त्वं च मे सरणं भव ॥

(२४) दसवाँ चातुर्मास्य

कौशांबी में नवें चातुर्मास्य के अंत में संघ में सौत्रांतिक और विनयांतिक आचार्य्यों में मतभेद हो गया। मतभेद का कारण अत्यन्त तुच्छ था। विनयानुसार पाखाना फिरने के पीछे पानी के लोटे को उलटकर रखने का विधान है और अब तक अयोध्या के आसपास की ऐसी ही परिपाटी है। एक दिन किसी सौत्रांतिक आचार्य्य ने भूल से पाखाने का लोटा औंधा नहीं किया। इस पर विनयांतिकों ने बड़ा कोलाहल मचाया। बात बढ़ती गई और द्वेष की आग इतनी बढ़ गई कि महात्मा बुद्धदेव के भी शांत करने पर शांत न हो सकी। महात्मा बुद्धदेव को भिक्षुओं की इस उद्दंडता से बड़ा दुःख हुआ। महात्मा बुद्धदेव कौशांबी से श्रावस्ती गए, पर वहाँ भी वह विरोधाग्नि जो मौद्गलि नामक भिक्षु ने प्रज्वलित की थी, शांत न हुई। बुद्धदेव वहाँ से अकेले आनंद को साथ ले चुपके से मगध की ओर भाग निकले और राजगृह भी न जाकर वहीं एक जंगल में जिसका नाम पललेय वन था, चले गए और वहीं उन्होंने अपना दशम चातुर्मास्य व्यतीत किया। *

उसी वर्ष देवदत्त भी, जब वे कौशांबी में थे, आनंद, सारिपुत्र और मौद्गलायन की प्रधानता न सहकर रुष्ट होकर संघ से राज-

---

* कहते हैं कि इस चातुर्मास्य में भगवान् ने आनंद को भी वन के बाहर ही छोड़कर अकेले उस घोर कानन में एक वृक्ष के नीचे मौन होकर चातुर्मास्य व्यतीत किया था। इस चातुर्मास्य में केवल एक हाथी और एक बंदर उन्हें वन्य फल मूल लाकर दिया करते थे।

गृह चला गया था और वहाँ महाराज बिंबसार के राजकुमार अजातशत्रु को अपने वश में लाने के लिये प्रयत्न करने लगा। देवदत्त उस समय से राजगृह में रहने लगा और भगवान् बुद्धदेव से विरोध करने के लिये गुप्त रीति से उद्योग करने लगा।

वर्षा ऋतु के अंत में सारिपुत्र और मौद्गलायन उन्हें ढूँढ़ते हुए पललेय वन के पास पहुँचे। वहाँ उन्हें आनंद मिला और उससे उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान् इस जंगल में अकेले एकांतवास कर रहे हैं। आनंद को साथ ले सारिपुत्र और मौद्गलायन भगवान् बुद्धदेव के पास गए और उनसे संघ की दुरवस्था निवेदन कर श्रावस्ती चलने के लिये प्रार्थना की। बहुत कहने सुनने पर भगवान् बुद्धदेव ने श्रावस्ती जाना स्वीकार किया और एक दिन जङ्गल में रहकर वे उनके साथ श्रावस्ती चलने को रवाना हुए।

भगवान् बुद्धदेव का श्रावस्ती आना सुन भंडनकारी भिक्षुसंघ के लोग, जिन्हें परस्पर वाद विवाद और विरोध करने के कारण भगवान् बुद्धदेव ने परित्याग कर दिया था, श्रावस्ती की ओर चले। जब महाराज प्रसेनजित् को यह समाचार मिला कि फिर भंडनकारी भिक्षु श्रावस्ती में आ रहे हैं और यहाँ आकर फिर परस्पर वैर विरोध कर के भगवान् को कष्ट देंगे, तब उन्होंने उन्हें आने से रोकना चाहा, पर भगवान् बुद्धदेव ने महाराज प्रसेनजित् को रोका कि यदि भिक्षुगण आना चाहते हैं तो उन्हें आने दो। जब संघ के लोग वहाँ आए तो उन लोगों ने भगवान् बुद्धदेव से क्षमा-प्रार्थना की और भगवान् ने उन्हें क्षमा कर दिया।

(२५) ग्यारहवाँ चातुर्मास्य

श्रावस्ती में थोड़े दिन रहकर नंदोपनंद और वक को उपदेश कर वसंत ऋतु में भगवान् बुद्धदेव राजगृह गए और वहाँ ग्रीष्म ऋतु व्यतीत कर वर्षा ऋतु के आगमन के पूर्व राजगृह से दक्षिण दिशा के पर्वत के नाडक ग्राम में गए। नाडक ग्राम राजगृह से तीन गव्यूति (जितनी दूर तक गौ की आवाज जाती है) से दूनी दूरी पर था और इस ग्राम में ब्राह्मणों की बस्ती थी। एक दिन भगवान् बुद्धदेव पूर्वाह्न के समय अपना भिक्षापात्र और चीवर उठाकर गाँव में भिक्षा के लिये गए। उस दिन उस गांव में भारद्वाजगोत्रीय एक ब्राह्मण के यहाँ सीतायाग था। भगवान् बुद्धदेव कृषक भारद्वाज के यहाँ भिक्षा के लिये गए। भारद्वाज ने, उन्हें भिक्षा के लिये बैठे देखे, कहा—"हे श्रमण! मैं तो जोतता हूँ, बोता हूँ तब मुझे खाने को मिलता है, आप भी क्यों जोत बोकर नहीं खाते?" गौतम बुद्ध ने कहा—"हे ब्राह्मण! मैं भी जोत बोकर खाता हूँ।" ब्राह्मण ने यह सुन विस्मित हो हँसकर कहा—"गौतम! मेरे यहाँ तो जूआ, हल, फाल, बैल आदि कृषि की सामग्रियाँ हैं, पर आपके पास तो कुछ भी नहीं है। फिर आप कैसे जोत बो कर खाते हैं? मैं आपको कैसे कृषक मानूँ? आप तो भिक्षुक देख पड़ते हैं।" भगवान् ने भारद्वाज से कहा—

"भारद्वाज, मेरे पास श्रद्धा का बीज है, तप, तुष्टि और प्रज्ञा मेरा जूआ और हल है, ह्री की हरिस, मन की जोत, और स्मृति की

फाल से जोतता हूँ । कायगुप्ति, वचोगुप्ति और आहार में संयम और सत्य ही दाना और सौवर्च प्रमोचन, ओसाना है । वीर्य्य मेरे बैल हैं, योगक्षेम अधिवाहन है और मैं इस हल को नित्य अविश्रांत चलाया करता हूँ जिससे मुझे किसी प्रकार का सोच नहीं होता । हे भारद्वाज ! मैं यही कृषि करता हूँ । इस कृषि से अमृत फल मिलता है और कृषक सब दुःखों से छूट जाता है ।" *

भारद्वाज गौतम की यह बात सुन उनके चरणों पर गिर पड़ा और प्रव्रज्या ग्रहण कर भिक्षु हो गया ।

नाडक ग्राम में गौतम ने अपना ग्यारहवाँ चातुर्मास्य बिताया और चातुर्मास्य के समाप्त होने पर वे राजगृह चले गए ।

—:०:—

* सधा बीजं तपो वुट्ठि पञ्ञा मे युगनंगलं ।
हिरि ईसा मनो योत्तं सति मे फालपाचनं ।
कायगुत्ति वचोगुत्ति आहारे उदरे यतो ।
सच्चं करोमि निद्दानं, सोरच्चं मे पमोचनं ।
विरियं मे धुरधोरय्हं, योगक्खेमाधिवाहनं,
गच्छति अनिवत्तंतं यत्थं गत्वा न सोचति ।
एवमेसा कसी कट्ठा सा होति अमतप्फला,
एतं कसी कसित्वान सब्बदुक्खा पमुच्चति ।

(२६) बारहवाँ चातुर्मास्य

राजगृह में थोड़े दिन निवास कर भगवान् बुद्धदेव अपने संघ को साथ ले देशाटन को निकले और फिरते फिरते वेरंजर ग्राम में पहुँचकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। वहाँ के ब्राह्मणों ने उनकी यथावत् पूजा की और उनके उपदेश सुनकर उन्हें आगामी वर्षा में वहाँ चातुर्मास्य करने के लिये आमंत्रित किया। उनका निमंत्रण स्वीकार कर भगवान् बुद्धदेव वहाँ से आगे चले गए।

वर्षा ऋतु के आगमन पर वे अपने संघ समेत फिर वेरंजर ग्राम में आए। पर वहाँ उस वर्ष अनावृष्टि के कारण घोर अकाल पड़ा और दुर्भिक्ष के कारण वहाँ के ब्राह्मण लोग भगवान् बुद्धदेव और उनके संघ का कुछ विशेष सेवा-सत्कार न कर सके। संघ को दुर्भिक्ष पड़ने से भिक्षा में बड़ी कठिनता पड़ने लगी। दैवयोग से उस चातुर्मास्य में उत्तरापथ से घोड़े के व्यापारी घोड़े लेकर आए और उन लोगों ने घोड़ों के दाने में से कुछ काट कपटकर भिक्षुओं को देना आरम्भ किया जिसे लेकर संघ के लोगों ने अपना निर्वाह किया। आनंद के अतिरिक्त संघ के सब लोग घोड़ों का दाना लेकर उसे कूट काटकर खाते रहे। पर आनंद ने दाना लेकर उसे साफ सुथरा कर पीसकर स्वयं खाया और भगवान् बुद्धदेव को खिलाया। कहते हैं कि कितने ही संघ के भिक्षुओं ने इस अनावृष्टि और दुर्भिक्ष के समय बासी रखना और दूसरे दिन बासी अन्न खाना प्रारंभ किया। भगवान् बुद्धदेव को उन लोगों का

यह आचरण भला न लगा और उन्होंने उससमय से भिक्षुओं को अन्न कूटने का निषेध किया और बासी अन्न खाने पर प्रायश्चित्त का विधान किया।

वर्षा ऋतु के समाप्त होने और नवीन अन्न उपजने पर ब्राह्मणों को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ। उन लोगों ने भगवान् बुद्धदेव के पास जाकर क्षमा प्रार्थना की और अन्न वस्त्रादि से उनका और संघ का पूजन और सत्कार किया।

—***—

(२७) तेरहवाँ चातुर्मास्य

चातुर्मास्य की समाप्ति पर भगवान् बुद्धदेव वेरुंजर ग्राम से चलकर अपने संघ समेत राजगृह आए और वहाँ संघ को छोड़ अकेले गया चले गए। एक दिन वे गया में एक यक्ष के घर में जाकर बैठे। थोड़ी देर में उस घर के स्वामी शूचीलोम और खरलोम नामक दो यक्ष जो कहीं गए थे, आए। उन दोनों को अपने द्वार पर एक भिक्षु बैठा हुआ देख बड़ा क्रोध हुआ। खर ने शूचीलोम से कहा "भाई, तुम जाओ और देखो यह कौन पुरुष है।" शूचीलोम घर पर आया और भगवान बुद्धदेव के पास उनसे सटकर बैठा और बोला "श्रमण! मैं तुमसे कुछ प्रश्न करूँगा। यदि तुमने उत्तर दिया तो ठीक है, अन्यथा मैं तुम्हारी टाँग पकड़कर गंगा पार फेंक दूँगा और तुम्हारा हृदय फाड़ डालूँगा।" उसकी यह बात सुन भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"मेरी टाँग पकड़कर फेंकने और मेरा हृदय फाड़ने के लिये कहना तो तुम्हारा साहस मात्र है। संसार में आज तक मुझे कोई ऐसा नहीं मिला जो मेरी टाँग पकड़कर फेंकने या मेरा हृदय फाड़ने का साहस करे। पर तुम प्रश्न करो; मैं उत्तर दूँगा।" यक्ष ने पूछा—

*हे गौतम! राग और द्वेष कहाँ से उत्पन्न होते हैं? अरति,

---

*रागो च दोसो च कुतोनिदाना
अरती रती लोमहंसो कुतोजा।
कुतोसमुट्ठाय मनोवितक्का
कुमारका धंकमिवोस्सजंति।

रति और लोमहर्ष कहाँ से पैदा होते हैं? मन में वितर्क कहाँ से होता है? जिससे यह मन एक कनकौए के समान है जिसे कुमार वा बालक इधर उधर उड़ाया करते हैं।"

गौतम ने कहा*—"यही आत्मा राग और दोष का निदान है। इसी से रति, अरति और लोमहर्ष उत्पन्न होते हैं। इसी से मन में वितर्क उत्पन्न होता है। यह उस कनकौए के समान है जिसे अबोध कुमार इधर उधर उड़ाया करते हैं। ये राग आदि, स्नेह से आत्मा में न्यग्रोध के स्कंध के समान उत्पन्न होते हैं और कामों में बार बार मालू नामक लता के समान ओतप्रोत लपटते हैं।

हे यक्ष! जो इनका निदान जानते हैं, वे आनंद प्राप्त करते हैं; और इस ओघ को जो अत्यंत दुस्तर है, पार कर के निर्वाण प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्भव नहीं होता।"

---

* रागो च दोसो च इतो निदाना
अरतीरती लोमहंसो इतोजा।
इतो समुट्ठाय मनो वितक्को
कुमारका धंकमिवोस्सजंति।
स्नेहजा अत्तसंभूता निग्रोधस्सेव खंधजा,
पुथू विसत्ता कामेसु मालुवा विततावने।
येनं पजानंति यतो निदानं।
तेनं विनोदेन्ति सुणेहि यक्खं।
ते दुत्तरं ओघमिमं तरंति।
अतरुस पुब्बं अपुनब्भवाय।

भगवान् का यह उत्तर और उपदेश सुन यक्ष का संतोष हो गया और उसने उनकी अनेक प्रकार से पूजा की।

भगवान् बुद्धदेव गया से राजगृह लौट गए और ग्रीष्म ऋतु बिताकर चालिय पर्वत पर वकुलवन में उन्होंने अपना तेरहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया। चातुर्मास्य के अंत होने पर वे चालिय पर्वत से राजगृह गए और वहाँ शरद् ऋतु व्यतीत करने लगे।

(२८) चौदहवाँ चातुर्मास्य

जाड़ा बीतने पर भगवान् बुद्धदेव राजगृह से श्रावस्ती को चले। श्रावस्ती में महाराज प्रसेनजित् के पुरोहित के घर एक लड़का उत्पन्न हुआ था जो बड़ा ही क्रूर और हिंसक था। वह किसी तांत्रिक प्रयोग के लिये पुरुषों की तर्जनी उंगली काट काटकर संग्रह किया था और उन उंगलियों की वह एक माला बनाकर पहने रहता था। इसी कारण लोग उसे अंगुलिमाल कहा करते थे। अंगुलिमाल के अत्याचार से श्रावस्ती की प्रजा बड़ी दुखी थी। जब भागवान् बुद्धदेव श्रावस्ती में पहुँचे, तब वहाँ चारों ओर अंगुलिमाल के अत्याचार और राक्षसी व्यवहार की चर्चा फैली हुई थी। स्वयं महाराज प्रसेनजित् उसके अत्याचारों से अत्यंत क्रुद्ध थे और उन्होंने उसे पकड़ने की आज्ञा दी थी, पर वह पकड़ा नहीं जाता था।

एक दिन भगवान् बुद्धदेव को भिक्षा के लिये श्रावस्ती के आप पास के किसी ग्राम में जाते हुए देख अंगुलिमाल ने उन्हें पुकारकर कहा—"हे भिक्षु! खड़े रहो।" भगवान् बुद्धदेव ने उसकी बात सुन कर कहा—"मैं ठहरा हूँ।" यह कहकर वे आगे बढ़े, पर अंगुलिमाल ने जब देखा कि वे कहते तो हैं कि मैं ठहरा हूँ पर वे आगे बढ़ते जा रहे हैं, तब उसने फिर कहा—'भिक्षु! आप मिथ्या कह रहे हैं कि आप ठहरे हैं, आप तो भागे जाते हैं।" भगवान् ने उसकी यह बात सुनकर कहा—"अंगुलिमाल! मैं सच कहता हूँ। इस संसार में

एक मैं ही स्थिर हूँ, और शेप सब चल रहे हैं, और सब से अधिक तुम।" अंगुलिमाल को भगवान् की यह बात सुन ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और भगवान् ने उसे साथ लिए जेतवन में आ उसे पात्र और चीवर दे भिक्षु बना दिया।

उस दिन सायंकल को जब महाराज प्रसेनजित् महात्मा बुद्धदेव के दर्शन के लिये आए, तब उन्होंने भगवान् बुद्धदेव से अंगुलिमाल के पकड़ने के लिये स्वयं प्रस्थान करने की अपनी इच्छा प्रकट कर के उनका आशीर्वाद माँगा। महाराज की बातें सुन भगवान् बुद्धदेव ने हँसकर अंगुलिमाल की ओर संकेत कर के कहा—'राजन्! अंगुलिमाल तो आपके पास ही बैठा है। आप किसे पकड़ने जाइएगा?" महाराज उनका यह वचन सुन और अंगुलिमाल को प्रशांत भिक्षु रूप में देख अत्यंत विस्मित हो वहाँ से अपने प्रासाद को पधारे। उस वर्ष भगवान् बुद्धदेव ने अपना चौदहवाँ चातुर्मास्य श्रावस्ती के जेतवन विहार मे व्यतीत किया।

(२९) पंद्रहवाँ, सोलहवाँ, सत्रहवाँ और अठारहवाँ चातुर्मास्य

श्रावस्ती में चौदहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत कर भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्यों समेत वहाँ थोड़े दिन ठहरकर देशाटन को निकले और भ्रमण करते हुए पद्रहवीं वर्षा के प्रारंभ में कपिलवस्तु नगर में पहुँचे और वहाँ न्यग्रोधाराम में उन्होंने अपना पंद्रहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया। कपिलवस्तु से चलकर भगवान् बुद्धदेव फिर श्रावस्ती आए। वहाँ से वे एक दिन आडविक नामक ग्राम की ओर चले। यह आडविक ग्राम श्रावस्ती से तीस योजन पर हिमालय पर्वत में था। इस गाँव से एक गव्यूति पर पीपल का एक पेड़ था जिसके नीचे आडवक यक्ष का घर था। एक दिन आडवक ग्राम का राजा मृगया को गया था और लौटकर थककर उसी पीपल के नीचे यक्ष के यहाँ ठहर गया था। जब वह वहाँ विश्राम कर के चलने लगा तो आडविक यक्ष आकर आगे खड़ा हो गया और राजा के प्राण लेने पर तुल गया। बड़ी कठिनाई से राजा ने उसे प्रति दिन एक मनुष्य और एक हाँडी भात देने की प्रतिज्ञा कर अपने प्राण बचाए और अपने नगर का मार्ग लिया। उस समय से प्रति दिन उस राजा की ओर से एक मनुष्य और एक हाँडी भात नगर से यक्ष के लिये भेजा जाने लगा।❀

❀ यह कथा महाभारत की उस कथा से बहुत मिलती जुलती है जिसमें भीम

पहले तो राजा दंडित पुरुषों को भेजा करता था, पर जब कारागार में कोई न रह गया तब वह नवजात बालकों को भेजने लगा। दैवयोग से जिस दिन भगवान् बुद्धदेव उस ग्राम के पास पहुँचे, उसी दिन महाराज के यहाँ कुमार उत्पन्न हुआ था, और नियमानुसार दूसरे दिन उसी नवजात कुमार को यक्ष के पास भेजने की पारी थी।

भगवान् बुद्धदेव आडविक ग्राम के पास पहुँचकर आडविक यक्ष के घर पर गए। उस समय यक्ष घर पर नहीं था। भगवान् बुद्धदेव उसके घर के द्वार पर, जिस आसन पर आडवक यक्ष बैठता था, जाकर बैठ गए। थोड़ी देर में आडवक भी अपने घर पर आया और आते ही भगवान् बुद्धदेव से बोला,-"आप निकल जाइए।" भगवान् वहां से निकलकर बाहर खड़े हो गए। उसने फिर उनसे कहा-"श्रमण, आइए"। बुद्धदेव भीतर जाकर बैठ गए। इस प्रकार उसने तीन बार गौतम बुद्ध को चले जाने और फिर आकर बैठने के लिये कहा और वे उसके आज्ञानुसार जब जब उसने निकलने को, कहा निकल गए और जब आकर बैठने को कहा, तब जाकर बैठ गए। जब उसने फिर चौथी बार निकलने को कहा, तब उन्होंने कहा-"अब तो मैं न निकलूँगा। जो तेरे जी में आवे सो कर।" यक्ष ने कहा "मैं आपसे प्रश्न करूँगा और यदि आप उत्तर न दे

का एक चक्राग्राम में रहकर बकासुर का वध करना लिखा है। अंतर यही है कि भीम ने बकासुर का वध किया और गौतमबुद्ध ने आडविक को उपदेश दे शांति प्रदान की।

सकेंगे तो मैं आपका हृदय फाड़कर आपको मार डालूंगा।" भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"यक्ष! मारने की तो बात ही और है। मुझे मारनेवाला संसार में कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ। अस्तु, तुम प्रश्न करो, मैं तुम्हें उत्तर दूंगा।"

*यक्ष—"पुरुष के लिये कौन श्रेष्ठ धन है? सुचीर्ण सुख देनेवाला कौन है? संसार में स्वादुतम कौन वस्तु है? किस प्रकार का जीवन व्यतीत करनेवाला श्रेष्ठ (जीवित) है?"

गोतम—"श्रद्धा पुरुष के लिये श्रेष्ठ धन है, धर्म सुचीर्ण सुख देनेवाला है, सत्य संसार में स्वादुतम पदार्थ है, प्रज्ञा से जीवन निर्वाह करनेवाला ही संसार में श्रेष्ठ (जीवित) है।

यक्ष—"ओघ को किससे भर सकते हैं? अर्णव को किससे पार कर सकते हैं? दुःख का नाश कैसे कर सकते हैं और परिशुद्धि किससे होती है?"

---

*यक्ष—किंसूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं किंसु सुचीण्णो सुखमावहाति।
किंसुहवे सादुतरं रसानं, कथं जीविं जीवितमाहु सेट्ठं॥
गौतम—सद्धीधवित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचीण्णो सुखमावहाति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं, पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं॥
यक्ष—कथं सुतरती ओघं, कथं सुतरति अण्णवं।
कथं सुदुक्खं अच्चेति कथं सुपरिसुज्झति॥
गौतम—सद्धाय तरती ओघं अप्पमादेन अण्णवं।
विरियेन दुक्खं अच्चेति पञ्ञाय परिसुज्झति॥

गौतम-"श्राद्ध से ओघ पार कर सकते हैं, अप्रमाद से अर्णव उतर सकते हैं; वीर्य्य से दुःख का नाश हो सकता है और प्रज्ञा से परिशुद्धि प्राप्त होती है।"

यक्ष-"प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है? धन किससे मिलता है? कीर्ति किससे मिलती है; किससे इस लोक से परलोक को प्राप्त हो कर मनुष्य सोच नहीं करता?"

गौतम—"श्रद्धावान् अप्रमत्त विचक्षण पुरुष निर्वाण की प्राप्ति के लिये आर्हत धर्म की शुश्रूषा से प्रज्ञा प्राप्त करता है। प्रत्युपकारी सहनशील पुरुष उत्थान अर्थात् आलस्य-त्याग से धन प्राप्त करता है, सत्य से कीर्ति प्राप्त करता है और दान से मित्र मिलते हैं। जिस गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग नामक चार धर्म होते हैं, वही मरकर इस लोक से परलोक को प्राप्त होकर सोच नहीं करता।*"

यक्ष-कथं सुलभते पञ्ञं कथं सुविन्दते धनं ।
कथं सुकित्तिं पप्पोति कथंमित्तानि गन्थति ॥
अस्मालोकापरंलोकं कथं पेच्चनसोचति ।
*गोतम सद्दहानो अरहतं धम्मं निब्बाणपत्तिया ॥
सुस्सूसा लभते पञ्ञं अप्पमत्तो विचक्खणो ।
पतिरूपकारी धुरवा उट्ठाता विंदते धनं ॥
सच्चेन कित्तिं पप्पोति ददं मित्तानि गंथति ।
यस्सेते चतुरो धम्मा सद्धस्स घरमेसिनो ॥
सच्चं धम्मो धिती चागो सवे पेच्च न सोचति ।
अस्मा लोका परंलोकं स वे पेच्च न सोचति ॥

यक्ष ने भगवान् बुद्धदेव का उत्तर सुन हाथ जोड़कर कहा—"भगवान्, आपके इस उपदेश से मुझे ज्ञान हो गया। आपने मेरे अंतःकरण में ज्ञानरूपी दीपक जला दिया। मैं आप की शरण में हूँ।"

उस रात को भगवान् बुद्धदेव उसी यक्ष के स्थान पर रहे। प्रातःकाल होते ही राजा ने अपने राजकुमार और भात की हाँडी के साथ मंत्री को भेजा। यक्ष ने राजकुमार को लेकर भगवान् बुद्धदेव के आगे समर्पण किया। भगवान् ने कुमार को दीर्घायु और यक्ष को सुखी होने का आशीर्वाद देकर वह कुमार मंत्री को दे दिया। मंत्री राजकुमार को लिए हुए राजा के पास गया। उसे सकुशल कुमार सहित आते देख सब लोगों को हर्ष और विस्मय हुआ। राजमहल में आनंद के बाजे बजने लगे।

मंत्री के चले जाने पर भगवान् बुद्धदेव यक्ष के आश्रम से उठे और अपना पात्र लेकर नगर में भिक्षा के लिये पधारे। महाराज को जब यह समाचार मिला कि भगवान् बुद्धदेव जिनकी कृपा से राजकुमार के प्राण बचे थे, नगर में भिक्षा के लिये पधारे हैं, तब उन्होंने भगवान् को बुलाकर भोजन-वस्त्र से उनकी उचित पूजा की। भगवान् ने राजप्रासाद में भिक्षा कर राजपरिवार को उपदेश दिया। जब वे अपने स्थान से उठे और चलने के लिये खड़े हुए, तब महाराज ने उनसे आगामी चातुर्मास्य आलवी ग्राम में व्यतीत करने के लिये प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर भगवान् वहाँ से श्रावस्ती को वापस आए।

श्रावस्ती से भगवान् संघ समेत देशाटन को निकले और भिन्न भिन्न स्थानों में विचर कर उपदेश करते रहे। वर्षा ऋतु के आगमन पर भगवान् आलवी ग्राम में पधारे और वहाँ महाराज के बनवाए एक आराम में ठहर कर उन्होंने अपना सोलहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत किया।

आलवी ग्राम में सोलहवाँ चातुर्मास्य व्यतीत कर भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती होते हुए राजगृह गए और वहाँ गृध्रकूट पर ठहरे। वहाँ भगवान् दो वर्ष तक रहे और अपना सत्रहवाँ और अठारहवाँ चातुर्मास्य उन्होंने वहीं व्यतीत किया।

इन दो वर्षों में देवदत्त ने उनके साथ अनेक चालें चलीं। पहले तो उसने भगवान् से यह कहा कि राजाओं के उत्तराधिकारी युवराज होते हैं; आप धर्मराज हैं; आपको उचित है कि आप मुझे अपने युवराज पद पर नियुक्त कीजिए। भगवान् बुद्धदेव ने उसकी बात सुन कर कहा—"देवदत्त! अपने प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के होते हुए हमें किसी को युवराज के पद पर नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है।" देवदत्त भगवान् का यह उत्तर सुन उनसे और खिन्न हो गया और उनका विरोध करने के लिये प्रयत्न करने लगा।

कहते हैं कि जिस वर्ष भगवान् बुद्धदेव ने अपना पंद्रहवाँ चातुर्मास्य कपिलवस्तु में बिताया था, उसी वर्ष महाराज बिंबसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को, जिसकी अवस्था सात वर्ष की थी, युवराज पद पर अभिषिक्त किया था। यह अजातशत्रु देवदत्त का अनन्य भक्त

था और सदा उसी के कहने में रहता था। देवदत्त ने कई वर्ष राज-गृह में रहकर उस पर अपना आतंक जमा लिया था और अनेक साधुओं को अपना अनुयायी बना लिया था जिनमें कोकालिक, कंतमोरतिष्य, खंडदेव और समुद्रदत्त उसके प्रधान शिष्य थे।

एक दिन देवदत्त ने भगवान् बुद्धदेव के पास जाकर संघ के भिक्षुओं के लिये पाँच बातें स्वीकार करने के लिये आग्रह किया। वे पांचों बातें ये थीं—

१—भिक्षु आजीवन वन में रहें और भिक्षा के सिवा और किसी कार्य्य के लिये ग्राम वा नगर में प्रवेश न करें।

२—भिक्षु सदा वृक्ष-मूल वा श्मशान में अपना वास रखे और जाड़े, गरमी, या बरसात में कभी पर्णशाला वा आराम में न रहें।

३—भिक्षु सदा पांसुकूल धारण करें और किसी का दिया वस्त्र धारण न करें।

४—भिक्षु सदा टुकड़ा माँगकर खायँ और किसी एक घर में भोजन न करें।

५—भिक्षु सदा निरामिष भोजन करें और भिक्षा में भी सामिष भोज्य पदार्थ ग्रहण न करें।

देवदत्त का यह प्रस्ताव सुन कर भगवान् बुद्धदेव ने स्पष्ट शब्दों में इसका निषेध कर दिया और कहा—"मैं केवल कृत, दृश्य और उद्दिष्ट हिंसा का निषेध करता हूँ। मैं इन कर्मों की श्रेष्ठता अवश्य स्वीकार करूँगा, पर संघ के लिये उन्हें ऐसा कर्त्तव्य नहीं ठहरा

सकता कि जिनके त्याग में वे प्रायश्चित्तीय ठहरें।"

जब देवदत्त भगवान् बुद्धदेव की सम्मति न मिलने से निराश हो गया, तब वह यह कहकर उनके पास से विदा हुआ कि चाहे जो हो, मैं और मेरे अनुयायी भिक्षु इन पाँच प्रस्तावित नियमों का अवश्य पालन करेंगे।

भगवान् बुद्धदेव ने देवदत्त का यह आचरण देखकर कहा— "देवदत्त, तुमने अच्छा नहीं किया, संघ में भेद उपस्थित किया। जो संघ में भेद उपस्थित करता है, संसार में उससे बढ़कर कोई पापी नहीं हो सकता"

सुकरं साधुनासाधुं साधुं पापेन दुक्करं।
पापं पापेन सुकरं पापं येहि दुक्करं॥

साधु के लिये अच्छा काम करना सुगम है, पर वही अच्छा काम दुष्ट मनुष्य के लिये कठिन है। वैसे ही दुष्ट के लिये बुरा काम करना सुगम है, पर साधु के लिये उसी का करना महा कठिन है।

यहाँ से देवदत्त अपने शिष्यों सहित गया को चला गया और वहाँ रह कर उपदेश करता रहा। उसके चले जाने पर भगवान् ने राजगृह से सारिपुत्र और मौद्गलायन को गया में भेजा और जब देवदत्त आलस्य-ग्रस्त हो गया, तब सारिपुत्र और मौद्गलायन ने पारी पारी से भिक्षु संघ को मध्यमा प्रतिपदा का उपदेश करना आरंभ किया और सबको स्पष्ट रूप से यह समझा दिया कि निर्वाण न तो दुःख सहन से प्राप्त हो सकता है और न सुख में लिप्त होने से प्राप्त हो सकता है। गीता में भगवान् ने कहा है—

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अर्थात् योगयुक्त मुनि ब्रह्म को शीघ्र नहीं प्राप्त होता; पर जिसने ममत्व का नाश कर सब भूतों को अपनी आत्मा जाना है, वह सब कुछ करता हुआ भी कर्म दोष से लिप्त नहीं होता। इसलिये मनुष्य को अपने आप अपना उद्धार करना चाहिए और अपने शरीर को कष्ट नहीं देना चाहिए। मनुष्य आप ही अपना मित्र और आप ही अपना शत्रु है।

दूसरे दिन जब सारिपुत्र और मौद्गलायन गया से राजगृह को चले, तब देवदत्त के साथ के सब भिक्षु उसे छोड़कर उनके साथ चले गए और देवदत्त अकेला रह गया।

जब देवदत्त को भिक्षुओं ने त्याग दिया तब तो देवदत्त का क्रोध और भी भड़क और वह भगवान् बुद्धदेव के प्राण लेने के प्रयत्न में लगा।

———•○○———

(२०) उन्नीसवाँ और बीसवाँ चातुर्मास्य

भगवान् बुद्धदेव अपना अठारहवाँ चातुर्मास्य राजगृह में कर के देशाटन को निकले और देशाटन करते हुए अपना उन्नीसवाँ चातुर्मास्य चालिय पर्वत में व्यतीत कर राजगृह लौट आए और गृध्रकूट पर ठहरे। देवदत्त तो पहले ही से उनके प्राण लेने के प्रयत्न में लगा था; एक दिन जब भगवान् बुद्धदेव नगर में भिक्षा के लिये पधारे तो उसने अजातशत्रु से मंत्रणा कर के नालागिरि नामक मत्त हाथी को छुड़वा दिया। पर मत्त हाथी भगवान् बुद्धदेव के सामने कुत्ते की तरह बैठ गया और उन पर आक्रमण न कर सका। देवदत्त जब हाथी से उनके प्राण लेने में अकृतकार्य्य हुआ, तब लज्जित होकर उनके मारने के लिये उसने धनुर्धरों को नियत किया, पर वे लोग भी उनके मारने में असमर्थ हुए। निदान हारकर देवदत्त ने भगवान् बुद्धदेव पर जब वह गृध्रकूट पर्वत के नीचे से जा रहे थे, ऊपर से पत्थर लुढ़का दिया, जिससे भगवान् बुद्धदेव के बाएं पैर के अँगूठे में चोट आ गई।

भगवान् को इस चोट से अधिक व्यथा हुई, जिसकी चिकित्सा के लिये उन्होंने जीवक नामक चिकित्सक को बुलाया। यह जीवक राजगृह का रहनेवाला था और तक्षशिला के विद्यालय में इसने शिक्षा प्राप्त की थी। यह अट्ठारह विद्याओं और चौंसठ कलाओं का जानकार था। महाराज बिंबसार ने इसे अपने दरबार में राजवैद्य नियत किया था। यह भगवान् बुद्धदेव का बड़ा भक्त था और संघ की धर्मार्थ

चिकित्सा किया करता था। एक बार लोग, देश में रोग फैलने पर केवल सुलभ चिकित्सा के लालच से भिक्षु बन संघ में घुसकर भगवा वस्त्र पहन बिना सच्चे वैराग्य के भिक्षु हो गये थे और जीवक को विवश हो उनकी चिकित्सा करनी पड़ती थी। जब भगवान् बुद्धदेव को यह भेद मालूम हुआ, तब उन्होंने आगे के लिये यह नियम कर दिया कि अब से कोई रोगी पुरुष संघ में भिक्षु बनाकर न लिया जाय। जीवक ने राजगृह में भगवान् के लिये एक विहार भी बनवाया था, जहाँ भगवान् बुद्धदेव कभी कभी जाकर रहा करते थे। भगवान् के बुलाने पर जीवक तुरंत उनके पास दौड़ा हुआ आया और उसने उनकी चोट की मरहम पट्टी की। उस समय जीवक ने भगवान् बुद्धदेव से पूछा—

"महाराज! लोग आपको जीवन्मुक्त कहते हैं, पर क्या आपको भी विविध ताप सताते हैं और शरीर में कष्ट होता है?" इस पर बुद्धदेव ने कहा—

गतद्धीनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधी।
सब्बगंठपहीनस्स परिळाहोन विज्जति॥

हे जीवक! रोगहीन, शोकहीन, सर्वधी और विप्रमुक्त पुरुष को जिसकी सब ग्रंथियाँ छूट गई हों, कष्ट अवश्य होता है। पर उस कष्ट से उसे राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता, वह संसार का धर्म समझ उसे सहता है। सुख-दुःख उसे होते तो हैं, पर उनसे उसकी वृत्ति में चंचलता नहीं आती। यही बद्ध और मुक्त में अंतर है। जीवक

ने भगवान् का यह उपदेश सुन बौद्ध धर्म स्वीकार किया और जब तक भगवान् बुद्धदेव राजगृह में रहते थे, वह प्रति दिन तीन बार उनके दर्शन को आया करता था।

भगवान् बुद्धदेव ने अपना बीसवाँ चातुर्मास्य राजगृह में व्यतीत किया। यह उनका अंतिम चातुर्मास्य था जो उन्होंने राजगृह में किया था। राजगृह में देवदत्त का अधिकार बहुत बढ़ गया था और वह राजकुमार का गुरु बना हुआ था। राजकुमार अजातशत्रु उसके हाथ में था और काठ की पुतली की तरह उसके कहने पर काम करता था। देवदत्त के संग में रहकर राजकुमार का स्वभाव क्रूर हो गया था। वह बात बात में अपने पिता महाराज बिंबसार की अवज्ञा करता था और सदा उन लोगों को जो बूढ़े महाराज के विश्वासपात्र और प्रीति-भाजन थे, कष्ट पहुँचाया करता था। सच है, संगत का बड़ा प्रभाव होता है।

महात्मा बुद्धदेव ने जब यह देखा कि दुष्ट अजातशत्रु अपने पिता के इष्टमित्रों और विश्वासपात्र पुरुषों को कष्ट देने पर तुला हुआ है, तब वे अपना बीसवाँ चातुर्मास्य येन केन प्रकारेण राजगृह में बिताकर श्रावस्ती को चले गए; और आगे के लिये उन्होंने यह संकल्प किया कि अब यावज्जीवन श्रावस्ती के अतिरिक्त अन्यत्र वर्षा ऋतु व्यतीत न करूँगा।

—***—

(२१) श्रावस्ती

राजगृह त्याग कर भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती पहुँचे और जेतवन-विहार में ठहरे। यहाँ थोड़े दिन रहकर वे फिर देशाटन को निकले और भिन्न भिन्न स्थानों में उपदेश करते हुए वर्षा ऋतु के आगमन पर श्रावस्ती में लौट आए और उन्होंने अपना इक्कीसवाँ चातुर्मास्य जेतवन-विहार में व्यतीत किया। इस प्रकार भगवान् बुद्धदेव श्रावस्ती में पच्चीस वर्ष तक अपने चातुर्मास्य व्यतीत करते रहे। यद्यपि वे शरद ऋतु में कुछ दिनों के लिये कपिलवस्तु, कुशीनार, पावा, कौशांबी, काशी, वैशाली, राजगृह आदि स्थानों में यथाभिरुचि भ्रमण के लिये चले जाया करते थे और लोगों को अपना अमूल्य उपदेश अनेक उपचारों से देते थे, पर फ़िर भी वे अपना विशेष काल श्रावस्ती ही में बिताया करते थे। उनके उपदेशों से सारा त्रिपिटक परिपूर्ण है। पर यहाँ दो एक ऐसी घटनाओं का उल्लेख करना उपयोगी जान पड़ता है जिनसे इस बात का ठीक ठीक परिचय मिलता है कि महात्मा बुद्धदेव ने किसी नवीन धर्म की शिक्षा नहीं दी, किंतु उन्होंने प्राचीन ऋषियों के आध्यात्मिक विज्ञान का ही, जिस पर कर्म कांड और पाखंड का आवरण चढ़ गया था, परिमार्जित रूप से उपदेश किया था।

(३२) जातिवाद

कहते हैं कि एक दिन भगवान अपना भिक्षापात्र उठा भिक्षा के लिये जेतवन से निकले और श्रावस्ती के पास ही एक ग्राम में भिक्षा के लिये गए। उस गांव में अग्नीक भारद्वाज नामक एक वेदपारग अग्निहोत्री ब्राह्मण रहता था। गौतम बुद्ध उसके द्वार पर भिक्षा के लिये गए। उस समय भारद्वाज अग्निहोत्र कर रहा था। उसने बुद्ध-देव को भिक्षा के लिये द्वार पर खड़े देखकर कहा—"हे मुंडी, हे वृषल, वहीं रहो, भीतर मत आओ।" भगवान् बुद्धदेव ने उसकी बात सुनकर कहा—"भारद्वाज ! क्या तुम जानते हो कि वृषल किसे कहते हैं ?" भारद्वाज ने कहा—"नहीं, मैं तो नहीं जानता कि वृषल किसे कहते हैं।। आपही बतलाइए।" इस पर भगवान् बुद्ध-देव ने उसे उपदेश करना प्रारंभ किया और कहा,—

"चाहे द्विज हो वा शूद्र, जो दयाहीन पुरुष प्राणियों की हिंसा करता है, वही वृषल है। गांव और नगर के मार्ग को जो बंद करता वा रूँधता है, उसे वृषल कहते हैं। चाहे गृही हो वा वनी, जो पराया धन हरता वा चोरी करता है वा विना दिए हुए पदार्थ को ले लेता है, वही वृषल है। जो ऋण लेकर मांगने पर भाग जाता है वा मांगने पर यह कहता है कि मैं तुम्हारा ऋणी नहीं हूं, वही वृषल है। जो अपने वा पराए स्वार्थ के लिये धन लेकर मिथ्या साक्षी देता है, वही वृषल है। जो जाति, मित्र या सखा की स्त्री को सहसा दूषित करता है वही वृषल है। जो माता पिता आदि पूज्य वृद्ध जनों का भरणपोषण

नहीं करता वही वृषल है। जो पाप कर के उसे छिपाता है, वही वृषल है। जो ब्राह्मण, श्रमण वा अन्य त्यागी पुरुषों को झूठ कह कर धोखे में डालता है, जो ब्राह्मण, श्रमणादि, अतिथियों को भोजन के समय आने पर भोजन नहीं देता और उनसे क्रोध-पूर्वक कटु भाषण करता है, वही वृषल है। कहाँ तक कहें, जो पापी वा दुष्ट होकर अपने को पूज्य और साधु प्रकट करता है, वह घोर ब्राह्मण होते हुए भी वृषलाधम है। हे भारद्वाज! जन्म से न कोई ब्राह्मण होता है और न कोई वृषल, कर्म ही से मनुष्य ब्राह्मण और कर्म ही से वृषल होता है। देखो, मातंग ऋषि चांडाल के घर में उत्पन्न हुए थे, पर वे कर्म से ब्राह्मण हो गए थे। उनके पास बड़े बड़े ब्रह्मर्षि और राजर्षि उपदेश के लिये आते थे। वे विशुद्ध देवयान होकर काम और राग को वशीभूत कर के ब्रह्मलोक गए और उन्हें उनकी जाति ने ब्रह्मलोक जाने से न रोका। कितने मंत्रकार ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न पुरुष पापकर्म करने से दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। उन्हें उनकी जाति दुर्गति से न बचा सकी।"

इसी प्रकार एक दिन बुद्धदेव के पास अनेक ब्राह्मणों ने आकर उनसे प्रार्थना की कि—"गौतम! आप प्राचीन ऋषियों का बहुत गुणगान किया करते हैं। भला यह तो बताइये, उन ऋषियों का धर्म क्या था, और उनके धर्म में कैसे कैसे विकार उत्पन्न हो गया।" इस पर बुद्धदेव ने कहा—"प्राचीन ऋषि लोग संयतात्मा और तपोधन थे। कहाँ तक कहें, वे अपने भोजन के लिये धान्य का भी संग्रह नहीं करते थे। उनका स्वाध्याय ही धन-धान्य था

और वे ब्रह्मनिधि वा वेदों की रक्षा करते थे। लोग बलि वैश्वदेव में जो भाग निकालकर द्वार पर रख देते थे, उसी को खाकर वे लोग अपना और अपने शिष्यों का निर्वाह करते थे। उस समय लोग बड़े सुखी थे और सब लोग धन-धान्य और रत्न आदि से संपन्न थे और सब ब्राह्मणों का आदर करते थे। ब्राह्मण लोग अवध्य, अजेय और धर्म के रक्षक होते थे; वे आचार, विद्या और यज्ञों का पालन तथा आचरण करते थे। ब्राह्मण लोग पर-स्त्री-गमन नहीं करते थे। वे लोग इतर वर्णों को ब्रह्मचर्य्य, शील, आर्जव, मृदुता, तप, सौवर्च और अहिंसा तथा क्षांति की शिक्षा देते थे। उनमें जो सब से बड़ा, विद्वान् और दृढ़पराक्रम होता था वह ब्रह्मा कहलाता था। यह ब्रह्मा आजन्म ब्रह्मचारी रहता था और स्वप्न में भी अपना वीर्य्य स्खलित नहीं होने देता था। ब्राह्मण लोग चावल, घी, तेल, वस्त्र आदि गृहस्थों से माँगकर लाते थे और उसी से धर्मपूर्वक अग्निहोत्रादि यज्ञ करते थे। उनके यज्ञों में गौ आदि पशुओं की हिंसा कभी नहीं होती थी। उनका यह कथन था कि जैसे माता, पिता, भाई बंधु हैं, वैसे गौएँ भी हैं। उनसे औषध रूपी दूध का लाभ होता है। गौएँ अन्नदा, बलदा, बुद्धिदा और वर्णदा हैं। उस समय के ब्राह्मण महाकाय, वर्णवान, यशस्वी, अपने धर्म में परायण और कर्तव्यों के पालन में उत्सुक होते थे। जब तक ब्राह्मणों का ऐसा आचरण रहा तब तक वे सुख, मेधा, स्त्री और प्रजा से संपन्न थे। पर धीरे धीरे पीछे के ब्राह्मणों की प्रकृति बदल गई। जब उन लोगों ने देखा कि इतर वर्ण भी

सुख और ऐश्वर्य्य भोग रहे हैं, संसार में बड़े बड़े राजा हैं जिनकी स्त्रियाँ आभूषणों से लदी हैं, वे लोग अच्छे अच्छे घोड़ों से युक्त रथों पर चढ़ते हैं, अच्छे अच्छे घरों में रहते हैं, उनके पास अच्छी अच्छी गौएँ हैं, अनेक दास दासियाँ हैं तो उनके मुँह से लार टपकने लगी। तब उन लोगों ने अनेक मंत्रों की रचना की और वे महाराज इक्ष्वाकु के पास गए और उन से बोले—'महाराज! आप धन-धान्य संपन्न हैं, आप को यज्ञ करना चाहिए, आप यज्ञ कीजिए।' उनके कहने से महाराज इक्ष्वाकु ने अनेक अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपेयादि यज्ञ किए और उन ब्राह्मणों को अनेक गौएँ, शैय्या, वस्त्र, धनधान्य, दास, दासी, रथ, घोड़े आदि दक्षिणा में दिए। जब वे लोग इक्ष्वाकु से धनधान्य आदि दक्षिणा में लेकर अपने अपने घर गए और आनन्द से दिन काटने लगे, तब उनकी तृष्णा और बढ़ गई और बार बार नए नए मंत्रों की रचना कर के उन्होंने इक्ष्वाकु से अनेक यज्ञ कराए और विपुल धनधान्य प्राप्त किया। उस यज्ञ में सहस्रों घड़े दूध देनेवाली गौएँ मारी गई जिसे देख कर देव, पितर, इंद्र, राक्षस आदि सभी चिल्लाकर कहने लगे कि यह गोहिंसा का घोर अधर्म हो रहा रहा है। इसके पूर्व मनुष्यों में केवल इच्छा, भूख और बुढ़ापा ही था, कोई रोग नहीं थे और पशुओं की हिंसा से ही अट्ठानवे रोग उत्पन्न हुए। यज्ञों में इस हिंसा रूपी अधर्म का प्रचार इक्ष्वाकु के समय से प्रारंभ हुआ। इस प्रकार के धर्म को पुराना होते हुए भी गर्हित जानना चाहिए, और जो लोग ऐसा जानते हैं वे याजकों को गर्हित समझते हैं।

इस धर्म के फैलने पर पहले शूद्र और वैश्य वर्ण पृथक् हो गए, फिर क्षत्रिय वर्ण भी पृथक् हुआ और स्त्रियाँ अपने पतियों का अनादर और अवज्ञा करने लगीं। क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य लोग जातिवाद को लेकर काम के वशीभूत हो गए।"

(३३) कृषा गोतमी

एक दिन भगवान् बुद्धदेव के पास एक स्त्री अपनी गोद में एक मृतक बालक लिए हुए आई और उनसे प्रार्थना करने लगी कि आप अनेक औषध जानते हैं, आप कृपा कर ऐसा औषध बतलाइए जिससे मेरा यह मृत बालक पुनः जीवित हो जाय। उस स्त्री का नाम कृषा गोतमी था। वह बड़े संपन्न घराने की थी। उसके एक ही पुत्र था। उसके मर जाने पर वह पुत्रशोक से विक्षिप्त हो गई थी और मृतक बालक को अपनी गोद में लिये साधु संन्यासियों से उसके जीवित होने के औषध पूछा करती थी। भगवान् बुद्धदेव ने उस पगली की बात सुनकर कहा—"गोतमी! मैं तुम्हारे बालक को जिला सकता हूँ; पर तुम मुझे ऐसे घर से एक मुट्ठी सरसों ला दो जिस में आज तक कोई आदमी न मरा हो।" कृषा गोतमी बुद्धदेव के पास से दौड़ी हुई एक गाँव में गई और ऐसा घर ढूँढने लगी जिसमें कोई आदमी न मरा हो। पर जिस घर में वह पूछती थी, वहीं से यह उत्तर मिलता था कि अमुक पुरुष मर चुका है। इस प्रकार कई दिन वह इधर उधर मारी मारी फिरी, पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला जिसमें कोई पुरुष न मरा हो। अंत को उसे संसार में जीवन की अनित्यता का बोध हो गया और उसने अपने पुत्र को यह गाथा पढ़कर श्मशान में फेंक दिया—

'नगामधम्मो नो निगमस्स धम्मो न चापि यं एक कुलस्स धम्मो।
सब्बस्स लोकस्स सदेवकस्स एसेव धम्मो यदिदं अनित्यता।'

अनित्यता न नगर-धर्म है, न ग्राम-धर्म है और न यह किसी कुल का धर्म है, किन्तु सब मनुष्यों और देवताओं का यही स्वभाव है कि वे एक न एक दिन मरेंगे।

कृपा गोतमी अपने पुत्र को श्मशान में फेंककर गौतम बुद्ध के पास गई। बुद्धदेव ने उसे देखकर पूछा—"गोतमी! सरसों लाई?" गोतमी ने उत्तर दिया—"महाराज! अब मुझे सरसों की आवश्यकता नहीं है, मेरा चित्त अब स्वस्थ है।" भगवान् बुद्धदेव ने गोतमी की यह बात सुन उससे कहा—"हे गोतमी! पुत्र और पशु में आसक्त मनुष्यों पर मृत्यु उसी प्रकार आक्रमण करती है जैसे रात को गाँवों में जल-प्रवाह आकर सोए हुए लोगों को बहा ले जाता है। जब किसी की मृत्यु आ जाती है, तब न उसके पुत्र न पिता और न बंधु उसे बचा सकते हैं। शीलवान् पंडितगण इसे जान कर अपने लिये निर्वाण का मार्ग साफ करते हैं।"

गोतमी को महात्मा बुद्धदेव का उपदेश सुन ज्ञान हो गया। उसने उनसे प्रव्रज्या और उपसंपदा ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की और भगवान् बुद्धदेव ने उसे प्रव्रज्या और उपसंपदा प्रदान की। गोतमी प्रव्रज्या लेते समय बड़े हर्ष से यह गाथा गाने लगी—

पेमतो जायती सोको पेमतो जायती भयम्।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयम्॥

अर्थात् प्रेम से ही शोक होता है, प्रेम से ही भय होता है; जो प्रेम से विप्रमुक्त है, उसे शोक नहीं है; और फिर भय कहाँ।

---

(३४) विशाखा

श्रावस्ती में महाराज प्रसेनजित् के कोषाध्यक्ष मृगार के पुत्र पुण्यवर्धन की स्त्री का नाम विशाखा था। वह अंगराज के कोषाध्यक्ष धनंजय की पुत्री थी। विशाखा ने श्रावस्ती में भगवान् बुद्धदेव के लिये एक आराम बनवा दिया था जिसका नाम पूर्वाराम था। वह भगवान् बुद्धदेव पर बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखती थी और सदा अनेक भिक्षुओं और भिक्षुनियों की अन्न वस्त्र से पूजा किया करती थी। भगवान् बुद्धदेव जब श्रावस्ती में रहते थे, तब कभी जेतवन विहार में और कभी पूर्वाराम में रहा करते थे।

(३५) अजातशत्रु

महात्मा बुद्धदेव जब राजगृह से अपना बीसवाँ चातुर्मास्य कर के श्रावस्ती चले आए, तब से महाराज विंबसार को उनका पुत्र अजातशत्रु देवदत्त के उकसाने से अधिक सताने लगा। उसने महाराज के समय के सब नौकरों को महाराज से पृथक् कर दिया और अंतिम अवस्था में अपने पिता महाराज विंबसार को पकड़कर कारागृह में डाल दिया। इस कारागृह में अजातशत्रु ने महाराज विंबसार को अनेक प्रकार की यातनाएँ दीं और बूढ़े महाराज विंबसार ने बड़ी धीरता से सब प्रकार के कष्ट सहकर कारागार में ही अपने प्राण त्याग दिए।

कहते हैं कि जिस दिन महाराज विंबसार ने प्राण-त्याग किया, उसी दिन अजातशत्रु की राजमहिषी को दो पुत्र एक साथ ही उत्पन्न हुए। इधर कारागार से नियुक्त पुरुष महाराज विंबसार की मृत्यु का समाचार लेकर पहुँचे, उधर राजमहल से निवेदक राजकुमारों के जन्म का समाचार लेकर आया। ऐसी अवस्था में लोगों ने पहले पुत्रों के जन्म का समाचार देना उचित समझकर युवराज को पुत्र-जन्म का समाचार सुनाया। पुत्र-जन्म के आनंद से युवराज विह्वल हो गया और मंत्रियों से कहने लगा कि मेरे जन्म के समय मेरे पिता को भी ऐसा ही आह्लाद हुआ होगा। वह महाराज को कारागार से मुक्त करने की आज्ञा देना ही चाहता था कि कारागार के प्रधान का पत्र जिसमें उसने महाराज की मृत्यु की सूचना

दी थी, राजकुमार के हाथ में दिया गया। उसे पढ़ते ही अजातशत्रु पितृशोक से व्याकुल होकर रोने लगा और सारा आनन्द भूल गया। उस समय उसने अपने किए पर बड़ा पश्चात्ताप किया और वह दौड़ा हुआ श्मशान पर गया। अपने पिता के शव का दाह उसने अपने हाथों किया। उस समय से अजातशत्रु को सारे संसार का सुख, राज्य और ऐश्वर्य फीका मालूम पड़ने लगा। भगवान् बुद्धदेव अपना सत्ताइसवाँ चातुर्मास्य समाप्त कर श्रावस्ती से भ्रमण करते हुए इसी बीच राजगृह में गए। देवदत्त जब कई बार महात्मा बुद्धदेव के प्राण लेने के प्रयत्न में कृतकार्य्य न हुआ तो उसकी चिंता बढ़ती गई और उसे राजयक्ष्मा रोग हो गया। उसकी यह दशा देख अजातशत्रु को और भी भय हुआ। राजकार्य्य में उसका चित्त नहीं लगता था। निदान मंत्रिगण जीवक से परामर्श कर अजातशत्रु को भगवान् बुद्धदेव के पास ले गए। वहाँ भगवान् बुद्धदेव अपने शिष्यों को उपदेश कर रहे थे। अजातशत्रु भगवान् बुद्धदेव के पास गया और वहाँ वह उनके उपदेशों को कई दिन तक निरंतर श्रवण करता रहा जिसका फल यह हुआ कि उसको आत्मा को शांति प्राप्त हुई और उसने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया।

देवदत्त ने जब यह देखा कि अजातशत्रु महात्मा बुद्धदेव का भक्त हो गया, तब उसे और भी अधिक चिंता हुई और वह दिनों दिन क्षीण होने लगा। उसने कई बार चाहा कि भगवान् बुद्धदेव से क्षमा प्रार्थना करे, पर भगवान् बुद्धदेव उसके मिलने से सदा किनारा करते रहे।

महात्मा बुद्धदेव राजगृह से चलकर कपिलवस्तु होते हुए श्रावस्ती गए और वहाँ जेतवन विहार में ठहरे। इसी बीच में देवदत्त की बीमारी ने भीषण रूप धारण किया। वह अपने जीवन से निराश हो गया। सारे जीवन के दुष्कर्म और कपट तापसता उसकी आँखों के सामने फिरने लगी। अंत को वह निराश होकर कोकाली आदि अपने चारों शिष्यों को लेकर पालकी पर चढ़ महात्मा बुद्धदेव से क्षमा-प्रार्थना करने के लिये श्रावस्ती को रवाना हुआ। कई दिन चलकर वह श्रावस्ती में पहुँचा और जेतवन विहार के उत्तर फाटक पर एक तालाब के किनारे उतरा। वहाँ उसने स्नान करना चाहा और यह निश्चय किया कि स्नान कर के महात्मा बुद्धदेव के आगे जाकर क्षमा माँगे। लोगों ने उसे आते देख बड़ा कोलाहल मचाया और भगवान् बुद्धदेव को उसके आगमन की सूचना दी। बुद्धदेव ने लोगों को व्याकुल देखकर कहा—"तुम लोग घबराओ मत, देवदत्त यहाँ नहीं आ सकता।" कहते हैं कि देवदत्त स्नान करने के लिये ज्यों ही तालाब में घुसा, चाहे दुर्बलता के कारण हो वा तालाब में दलदल रही हो, वह उसी तालाब में फँसकर रह गया और उसके प्राण वहीं निकल गए।

इसके अनंतर भगवान् बुद्धदेव अपना अट्ठाइसवाँ चातुर्मास्य श्रावस्ती में कर के राजगृह को रवाना हुए। वे पहले कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में पहुँचे। सुप्रबुद्ध जो भगवान् बुद्धदेव का श्वसुर और देवदत्त का पिता था, अपने पुत्र देवदत्त के मरने का समाचार सुन-कर मन ही मन जल रहा था। वह उनको गाली देता हुआ उनके

मार्ग में एक वृक्ष के नीचे यह संकल्प कर के बैठा कि उनको रास्ते में रोककर उनसे तकरार करे। भगवान् बुद्धदेव थोड़ी देर में न्यग्रोधाराम से चलकर उसी मार्ग से अपने संघ समेत निकलनेवाले थे। लोगों ने उनसे कहा कि सुप्रबुद्ध मार्ग में आपका मार्ग रोकने के लिये बैठा है। भगवान् बुद्धदेव ने उनकी बात सुनकर कहा—"सुप्रबुद्ध हमारा मार्ग नहीं रोक सकेगा।" और हुआ भी ऐसा ही। महात्मा बुद्धदेव के आने के पहले सुप्रबुद्ध के प्राण उसी पेड़ के नीचे निकल चुके थे।

इस प्रकार भगवान् बुद्धदेव कपिलवस्तु से होकर कुशीनार होते हुए राजगृह चले गए। वहाँ थोड़े दिन रहकर देशाटन करते हुए वर्षा के आगमन के पहले ही वे श्रावस्ती लौट आए।

इस प्रकार भगवान् बुद्धदेव पचीस वर्ष तक अपना चातुर्मास्य श्रावस्ती में करते रहे। वर्षा ऋतु का अंत हो जाने पर वे अपने संघ समेत देशाटन को निकला करते थे और कौशल, मगध, कौशांबी, कुरु आदि देशों में उपदेश के लिये चले जाया करते थे। उनके लगातार चालीस पैंतालीस वर्षों के उपदेश का यह परिणाम हुआ था कि मल्ल, लिच्छिवी, शाक्य आदि सभी राजवंश उनके अनुयायी हो गए थे। उत्तरी भारत में कोई ऐसा गाँव वा नगर न था जहाँ उनके नए धर्म के दस पाँच अनुयायी न थे। इसके अतिरिक्त भगवान् बुद्धदेव और उनके संघ के लोगों के पवित्र जीवन, सच्चे त्याग और शील-संतोष का सर्वसाधारण पर इतना प्रभाव पड़ा था कि जो लोग बौद्ध नहीं थे, वे भी श्रमणों का आदर और मान करते

थे। महात्मा बुद्धदेव अपने जीवन में शांति का उपदेश करते रहे। बुढ़ापे के कारण जब उनकी इंद्रियाँ शिथिल हो गईं, तब वे विशेष काल तक देशाटन के लिये नहीं निकल सकते थे; पर फिर भी साल में एक बार वे अवश्य देशाटन के लिये निकला करते थे।

(३६) महापरिनिर्वाण

ये तरंति अण्णवं सेतुं कत्वा न विसज्जपल्लानि ।
कुल्लं हि जनो पबंधति तिण्णां मेधाविनो जनाति ॥

महात्मा बुद्धदेव अपना पैंतालीसवाँ चातुर्मास्य श्रावस्ती में व्यतीत कर वहाँ से राजगृह को चले। मार्ग में कपिलवस्तु के खँडहर को जिसे पूसेनजित् के पुत्र विरूढ़क ने कपिलवस्तु को ध्वंस कर के अवशिष्ट छोड़ दिया था, देखते हुए मल्ल आदि के राज्यों से होकर वे राजगृह पहुँचे। राजगृह में वे गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे। उस समय मगधाधिप महाराज अजातशत्रु वृजि जाति पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। मंत्रि-परिषद् को महाराज अजातशत्रु ने इस काम के लिये आहूत किया और उन लोगों के सामने अपना वह विचार उपस्थित किया। मंत्रियों में इस विषय पर वाद विवाद हुआ और उनमें से बहुतेरों की यह सम्मति हुई कि इस विषय में महात्मा बुद्धदेव की भी सम्मति, जो उस समय दैवयोग से गृध्रकूट पर विराजमान थे, ली जाय। सर्वसम्मति के अनुसार परिषद् ने यह निश्चय किया कि परिषद् की ओर से महात्मा बुद्धदेव की सम्मति लेने के लिये वर्षकार उनके पास भेजा जाय।

वर्षकार महाराज अजातशत्रु की ओर से महात्मा बुद्धदेव की सेवा में उपस्थित हुआ और एकांत में जब महात्मा बुद्ध के पास आनंद के अतिरिक्त और कोई न रह गया, तब उसने उनसे सानुनय निवेदन किया—"महाराज ! अजातशत्रु ने हाथ जोड़कर आप से

इस विषय पर सम्मति माँगी है, कि मैं यदि महा समृद्धिशाली वृजि जाति पर आक्रमण करूँ तो उनका ध्वंस कर सकूँगा वा नहीं ?" महात्मा बुद्धदेव ने वर्षकार की बात सुनकर थोड़ी देर विचार कर उससे कहा—"हे ब्राह्मण ! जब तक वृजि जाति में ऐक्य है, वा जब तक वे मिलकर काम करते रहेंगे, वा जब तक वे लोग सदाचार और सत्प्रथा का पालन करते रहेंगे, जब तक उनमें वृद्ध जनों का सम्मान रहेगा, वा जब तक उनमें कुल-स्त्री और कुमारियों का आदर और सम्मान रहेगा, वा जब तक वे लोग चैत्यों की वंदना और पूजा करते रहेंगे, वा जब तक वे अर्हत् पूज्य पुरुषों की रक्षा और पालन करते रहेंगे, तब तक वृजि जाति के अधःपतन की संभावना नहीं है। उसकी क्रमशः वृद्धि होती जायगी।" भगवान् बुद्धदेव का उत्तर सुन वर्षकार ने कहा—"भगवन् ! जब इन सातों धर्मों में से एक का भी पालन करने से वृजि जाति का ध्वंस नहीं हो सकता और जब उनमें ये सब हैं, तब उनके अभ्युदय और सौभाग्य-वृद्धि में आश्चर्य्य ही क्या है। हे गौतम ! वृजि जाति में परस्पर भेद कराना अत्यंत कठिन है। अवश्य अजातशत्रु का उनके ध्वंस के लिये तैयारी करना व्यर्थ है।" यह कहकर भगवान् बुद्धदेव की आज्ञा ले वर्षकार गृध्रकूट से राजगृह चला गया।

उसके दो ही चार दिन बाद बुद्धदेव ने आनंद को आज्ञा दी कि भिक्षुसंघ को उपस्थान-शाला में आह्वान करो। आनंद ने उनकी आज्ञा पाकर भिक्षुसंघ को उपस्थान-शाला में आमंत्रित किया। संघ के सब लोगों के आ जाने पर भगवान् बुद्धदेव ने उनसे

कहा—"भिक्षुगण ! तुम्हें सात अपरिहातव्य धर्मों का उपदेश करता हूँ, सुनो—

जब तक तुम लोग (१) कर्म (२) भस्म (३) निद्रा और (४) आमोद में रत न होगे, (५) तुम्हारी पापेच्छा प्रबल न होगी, (६) तुम पापो मित्रों का संग न करोगे और (७) निर्वाण के लिये प्रयत्नशील रहोगे तब तक तुम्हारा अधःपतन न होगा।

हे भिक्षुगण ! दूसरे सात अपरिहेय धर्म सुनो—जब तक तुम (१) श्रद्धावान् (२) वीर्य्यवान् (३) ह्रीमान् (४) विनयी (५) शास्त्रज्ञ ६, वीर्य्यशाली और (७) स्मृति तथा प्रज्ञावान् रहोगे तब तक तुम्हारा क्षय नहीं होगा।

इन के सात अपरिहातव्य धर्म ये हैं—जब तक तुम लोग स्मृति, पुण्य, वीर्य्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा नामक सात ज्ञानांगों की भावना करते रहोगे, तब तक तुम्हारा अधःपतन न होगा।

इसके अतिरिक्त अन्य सात अपरिहातव्य धर्म सुनो। जब तक तुम लोग अनित्य, अनात्मा, अशुभ, आदीनव, प्रहाण, विराग और निरोध नामक सात प्रकार की संज्ञाओं की भावना करते रहोगे तब तक तुम लोगों का पतन कभी न होगा।

हे भिक्षुगण ! यह षड्विधि अपरिहातव्य धर्म है, सुनो—"जब तक तुम लोग ब्रह्मचारियों से कायिक, वाचिक और मानसिक मैत्री रखोगे और भिक्षा का उनके साथ सम विभाग करके भोजन

करोगे तथा सदाचार की रक्षा और सद्धर्म पर दृष्टि रखोगे तब तक तुम लोगों का क्षय नहीं होगा।"

इस प्रकार उपस्थान-शाला में भिक्षु-संघ को उपदेश कर भगवान् बुद्धदेव आनंद को साथ लेकर राजगृह से अंबलस्थिका नामक स्थान में गए और वहाँ उन्होंने अनेक भिक्षुओं को बुलाकर उन्हें शील, समाधि, प्रज्ञा आदि का उपदेश किया। वहाँ कुछ दिन रहकर वे नालंद गए। नालंद पहुँच कर वे प्रवरिकाम्र वन में ठहरे। वहाँ सारिपुत्र को जब उनके आने का समाचार मिला तब वह भगवान् बुद्धदेव के पास आया और अभिवादन करके बोला—"भगवन्! मेरी यह धारणा है कि आपके समान भूतकाल में आज तक कोई श्रमण वा ब्राह्मण इस संसार में उत्पन्न नहीं हुआ है; भविष्यत् में भी आपके सदृश किसी के होने की आशा नहीं है।" बुद्धदेव ने कहा—"सारिपुत्र! यह तुम्हारी अत्युक्ति है। तुम्हें मालूम नहीं है कि भूत काल के ज्ञानी लोग कैसे शील-संपन्न, धर्म-परायण और प्रज्ञावान् थे और न तुम्हें यही मालूम है कि भविष्य में कैसे कैसे ज्ञानी उत्पन्न होंगे। तुम यह भी नहीं जानते कि मैं कहाँ तक शीलसंपन्न, धर्म-परायण और प्रज्ञावान् हूँ।" सारिपुत्र भगवान् की यह नम्रता देखकर विस्मित हो गया। सारिपुत्र ने कहा—"भगवन्! ज्ञानियों ने यह उपदेश किया है कि जिज्ञासु को पहले काम, हिंसा, आलस्य, विचिकित्सा और मोह को जो पंच-विध प्रतिबंधक कहलाते हैं, दूर करना चाहिए। फिर क्रोध, उपनाह, म्रक्ष, प्रदाश, ईर्ष्या, मात्सर्य्य, शाठ्य, माया, मद, विहिंसा, अह्री, अनपात्रपा, स्त्यान,

उद्धत्य, अश्रद्धा, कौसीद्य, प्रमाद, मुषितस्मृता, विक्षेप, असंप्रजन्य, कौकृत्य, भिद्ध, वितर्क और विचार नामक चतुर्विंशतिधा उपक्लेशों का शमन करना उचित है। चित्त के शुद्ध होने पर उन्हें चतुर्विध स्मृत्युपस्थान की भावना करके उनमें उसे सुप्रतिष्ठित होना चाहिए। वे चतुर्विध स्मृत्युपस्थान ये हैं—(१) शरीर अपवित्र है, (२) वेदनाएँ दुःखमयी हैं, (३) चित्त चंचल है और (४) संसार के सब पदार्थ अलीक वा क्षणिक हैं। इसके अनंतर उसे सप्तविध संबोध्यंग की भावना करनी चाहिए जिनके नाम स्मृति, पुण्य, वीर्य्य, प्रीति, प्रसिद्धि, समाधि और उपेक्षा हैं। इस प्रकार निरंतर भावना करने से संबोधि और परम ज्ञान की प्राप्ति होती है। प्राचीन काल के ज्ञानियों ने इसी प्रणाली से संबोधि प्राप्त की है और भविष्यत् में भी वे इसी प्रणाली से सम्बुद्ध होंगे। भगवान् ने भी इसी मार्ग का अवलंबन करके संबोधि ज्ञान प्राप्त किया है।"

वहाँ से भगवान् बुद्धदेव पाटलिपुत्र गए। उस समय उस बड़े नगर का वहाँ नाम निशान तक नहीं था, किंतु वहाँ एक छोटा गाँव था जिसे पाटलिग्राम कहते थे। इसी के पास उस समय राजगृह के महाराज अजातशत्रु के दो मंत्री सुनिध और वर्षकार एक विकट दुर्ग बनवा रहे थे। भगवान् बुद्धदेव पाटलिग्राम के एक बाग में ठहरे। वहाँ उनके उपासकगण जो उस गाँव में रहते थे, भगवान् के पास उनकी परिचर्य्या के लिये आए और उन्होंने उनकी अनेक प्रकार के भक्ष्य और भोज्य से पूजा की। भगवान् बुद्धदेव ने अवसथ्यागारमें बैठ कर उन लोगों को संबोधन करके कहा—"दुःशील और

सुशील पाँच प्रकार की क्षति और लाभ प्राप्त करते हैं। दुःशील पुरुष जीवित अवस्था में घोर दरिद्रता को प्राप्त होता है, उसकी चारों ओर बदनामी होती है, मनुष्यों के समाज में वह सदा डरता हुआ जाता है, मरने के समय भी उसके चित्त की उद्विग्नता दूर नहीं होती और अंत को शरीर त्याग कर वह नरक में पड़ता है। सुशील पुरुष की दशा इसके विपरीत है। वह जीवित अवस्था में महासुख भोगता है, उसका सुयश चारों ओर फैल जाता है, वह मनुष्य समाज में प्रसन्न चित्त से जाता है, मरते समय उसके चित्त में किसी प्रकार की उद्विग्नता नहीं रहती और शरीर त्याग कर वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है।"

यहाँ से वे सुनिधि और वर्षकार के स्थान पर, जहाँ वे ठहर कर दुर्ग बनवा रहे थे, गए। वहाँ भगवान् बुद्धदेव कई दिन उन दोनों राजमंत्रियों के यहाँ रहे। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"यह पाटलिग्राम, पाटलिपुत्र कहलावेगा। इस को समृद्धि, सभ्यता और वाणिज्य बढ़ेगा और यह नगर सब से श्रेष्ठ नगर होगा; पर अंत को अग्नि, जल और गृह-विच्छेद से इस नगर का नाश होगा।"

वहाँ से भगवान् बुद्धदेव ने आनंद के साथ गंगा नदी को पार किया और वे कोटिग्राम गए। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को चारों आर्य्य सत्यों की शिक्षा दी और कहा कि जब तक मनुष्य इनके तत्त्व को नहीं समझता, तब तक वह जन्म-मरण के भय से नहीं बच सकता; और इनके सम्यक् ज्ञान से ही भवतृष्णा की निवृत्ति और पुनर्जन्म का उच्छेद हो जाता है।

वहाँ थोड़े दिनों तक रहकर बुद्धदेव नादिका गए। वहाँ वे गुंज-कावसथ नामक विहार में ठहरे। वहाँ भिक्षुगणों को आमंत्रित करके उन्होंने उन्हें धर्मादर्श सूत्र का उपदेश किया और लोगों को रत्नत्रय अर्थात् बुद्धधर्म और संघ की आस्था को अंतःकरण में स्थापित करने का उपदेश किया।

नादिका जहाँ वे अपने संघ समेत ठहरे थे, वैशाली नगर के किनारे एक गाँव था। कहते हैं कि उस समय वैशाली में आम्र-पाली नामक एक वेश्या रहती थी। भगवान् बुद्धदेव अपने संघ समेत उसी आम्रपाली के आम्रवन में ठहरे। आम्रपाली को भग-वान् के आगमन से इतना हर्ष हुआ कि उसने दूसरे दिन भगवान् की सेवा में उपस्थित होकर भगवान् को ससंघ दूसरे दिन अपने यहाँ भिक्षा करने के लिये निमंत्रण दिया। भगवान् बुद्धदेव ने आम्र-पाली का सच्चा भाव और उसकी श्रद्धा देख उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। जब इस निमंत्रणस्वीकृति की चर्चा वैशाली के लिच्छिवी राजवंश को पहुँची तो वे लोग भगवान् बुद्धदेव के पास पहुँचे और उन्होंने उन्हें अपने यहाँ भिक्षा करने के लिये निमंत्रण दिया। पर भगवान् बुद्धदेव ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैंने कल के लिये आम्रपाली का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, अतः कल आप लोगों की भिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। महात्मा बुद्धदेव की ये बातें सुनकर वहाँ के लिच्छिवी लोग अपने मन में बहुत दुखी हुए और महात्मा बुद्धदेव का आम्रपाली के यहाँ निमंत्रण स्वीकार करना उनको भला न लगा। पर उन्हें इसका ज्ञान नहीं था कि विद्वान्

महात्मा लोग किसी का तिरस्कार नहीं करते. वे उनके सच्चे भाव को देखते हैं और उनका उद्देश पतितों का उद्धार और लोगों का आचरण सुधारना होता है। वे अपने आचरणों को दूसरों के पथ-दर्शन के लिये छोड़ जाते हैं। दूसरे दिन भगवान् बुद्धदेव अपने संघ समेत आम्रपाली के घर गए। आम्रपाली ने भगवान् को संघ समेत बड़े आदर से भोजन कराया और श्रद्धा से उनके उपदेश सुने। जब भगवान् उसके यहाँ से चलने लगे, तब आम्रपाली ने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—"भगवन ! मेरी इच्छा है कि मैं अपने उस आम्रवन को जिसमें भगवान् अपने संघ समेत ठहरे हैं, संघ को दान करूँ।" उसका यह श्रद्धा और भक्तिपूर्ण वाक्य सुन भगवान् उसका दान स्वीकार कर अपने संघ समेत आम्रवन में आए।

नादिका में आम्रपाली के आम्रवन में कुछ दिनों रहकर भगवान् बुद्धदेव विल्व ग्राम गए। वर्षा ऋतु आ गई थी। भगवान् बुद्धदेव ने उसी गाँव में अपना अंतिम चातुर्मास्य व्यतीत किया। वहीं उनको अपने प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के परलोक प्राप्त होने का समाचार मिला। उस समय बुद्धदेव की अवस्था अस्सी वर्ष की हो चुकी थी। उनका शरीर भी कृष और जरा-ग्रस्त हो चुका था। वहाँ वर्षा ऋतु में उनके शरीर में कठिन पीड़ा हुई जिससे समस्त भिक्षुगणों में घबराहट छा गई। उस समय भगवान् बुद्धदेव ने आनंद को संबोधन कर के कहा—"आनंद ! भिक्षुसंघ मुझसे क्या आशा रखता है ? मैंने तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों में

धर्म समझा दिया है। मैंने तुम लोगों से कोई विषय गुप्त नहीं रखा है। तुम लोग धर्म ही का आश्रय ग्रहण करना। धर्म का प्रदीप प्रज्वलित करना। किसी दूसरे का भरोसा मत करना। अपना अपना भरोसा रखना। हे आनंद! मेरे परिनिर्वाण के बाद जो लोग धर्म का आश्रय लेंगे, धर्म का प्रदीप प्रज्वलित करेंगे, मुक्ति की प्राप्ति के लिये अपने ऊपर भरोसा रखेंगे और दूसरे का अवलंब न ढूँढेंगे, वे ही भिक्षुगणों में अग्रगण्य होंगे।"

चातुर्मास्य की समाप्ति पर महात्मा बुद्धदेव वैशाली गए और चापाल चैत्य में ठहरे। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने आनंद से अष्टविमोक्षसोपाण का उपदेश किया। भगवान् ने कहा—"हे आनंद! (१) मन में रूप * भावना विद्यमान होने से बाह्य जगत् में रूप दिखाई पड़ना विमोक्ष का प्रथम सोपान है, (२) मन में रूप भावना विद्यमान न रहने पर भी बाह्य जगत् में रूप दिखाई पड़ना द्वितीय सोपान है, (३) मन में रूप भावना विद्यमान न होना और बाह्य जगत् में भी रूप दिखाई न पड़ना तृतीत सोपान है, (४) रूपलोक को अतिक्रमण कर के 'अनंत आकाश' की भावना करते हुए 'आकाशानंत्यायतन' में विहार करना चतुर्थ सोपान है, (५) आकाशानंत्यायतन का अतिक्रमण करके 'अनंत विज्ञान' की भावना करते करते 'विज्ञानानंत्यायतन' में विहार करना पंचम सोपान है, (६) विज्ञानानंत्यायतन का अतिक्रमण करके 'अ

---

* यहाँ रूप शब्द उपलक्षणार्थ है। रूप से यहाँ रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म नामक छओं इन्द्रियों के विषय का ग्रहण अभिप्रेत है।

किंचन' अर्थात् 'कुछ नहीं' की भावना करते हुए 'अकिचंनायतन' में विहार करना षष्ठ सोपान है, (७) 'आकिचंनायतन' को अतिक्रमण करके 'नैव संज्ञा नैवासंज्ञायतन' 'ज्ञान और अज्ञान दोनों नहीं' की भावना करते हुए 'नैव संज्ञानैवाज्ञ संज्ञायतन' में विहार करना वा निमग्न होना सप्तम सोपान है, (८) अन्त को 'नव-संज्ञा नैवासंज्ञायतन' को अतिक्रमण कर ज्ञान और ज्ञाता दोनों का निरोध करके 'संज्ञावेदयितृ' उपलब्धि करना विमोक्ष का आठवाँ और अंतिम सोपान है।"

चापाल चैत्य से बुद्धदेव वैशाली के महावन-कूटागार-शाला में गए और वहाँ उन्होंने आनंद को भिक्षुसंघ को आमंत्रित करने की आज्ञा दी। भिक्षुसंघ के एकत्र हो जाने पर भगवान् बुद्धदेव ने उन्हें उपदेश देना प्रारंभ किया। बुद्धदेव ने कहा—"हे भिक्षुगण! मैंने तुम्हें जिस धर्म का उपदेश किया, तुम्हें उचित है कि तुम उसे अच्छी तरह से समझो और उस पर विचार करो। उसका चारों ओर प्रचार करो। तुम्हारा कर्तव्य है कि लोक के हित और सुख के लिये संसार में ब्रह्मचर्य्य स्थापन करो। मैं आज तुमको उसी धर्म के सात रत्नों का उपदेश करता हूँ। इन्हें "सप्तत्रिंशच्छिक्षमाण धर्म" भी कहते हैं। तुम लोग इन्हें धारण करो। वे सातों रत्न ये हैं-(१) स्मृत्युपस्थान, (२) सम्यक्प्रहाण, (३) ऋद्धिपाद, (४) इन्द्रिय, (५) बल, (६) बोध्यंग और (७) मार्ग।

(१) स्मृत्युपस्थान चार प्रकार का है—(१) शरीर अपवित्र है, (२) संसार की सब वेदनाएँ दुःखमयी हैं, (३) चित्त चंचल

(अनित्य) है और (४) संसार के सब पदार्थ (रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार) अलीक अर्थात् क्षणिक हैं। इन चारों का स्मरण और भावना करना चतुर्विध स्मृत्युस्थान है।

(२) सम्यक् प्रहाण चार प्रकार है-(१) अर्जित पुण्य का संरक्षण, (२) अलब्ध पुण्य का उपार्जन, (३) पूर्व-संचित पाप का परित्याग और (४) नूतन पापों की अनुत्पत्ति की चेष्टा करना।

(३) ऋद्धिपाद अर्थात असामान्य क्षमता की प्राप्ति के लिये (१) दृढ़संकल्प, (२) चिंता वा उद्योग, (३) उत्साह और (४) आत्मसंयम करना।

(४) इंद्रियाँ, यह पाँच प्रकार की हैं—(१) श्रद्धा, (२) समाधि, (३) वीर्य, (४) स्मृति और (५) प्रज्ञा।

(५) बल भी पाँच ही प्रकार के हैं-(१) श्रद्धाबल, (२) समाधि-बल, (३) वीर्यबल, (४) स्मृतिबल और (५) प्रज्ञाबल।

(६) बोध्यंग, यह सात प्रकार का है—(१) स्मृति, (२) धर्म-परिचय वा पुण्य, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि, (६) समाधि और (७) अपेक्षा।

(७) आर्य मार्ग—यह आठ प्रकार का है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक्संकल्प, (३) सम्यग्वाचा, (४) सम्यक्मात (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, (७) सम्यक्स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।

इन्हीं सैंतीस पदार्थों को लेकर मैंने धर्म की व्यवस्था की है। तुम्हें उचित है कि तुम इनका श्रवण, मनन और निदिध्यास पूर्वक

सब लोगों में प्रचार करो। हे भिक्षुकगण! अब मेरा समय आ गया है। अब तीन महीने बाद मैं निर्वाण को प्राप्त हूँगा। तुम सावधान होकर काम करना। मेरा जीवन पूरा हो गया, अब मेरे जीवन के थोड़े ही दिन शेष रह गए हैं। अब मैं संसार त्याग कर जाऊँगा। मैंने अपने आपको अपना शरण बनाया है अर्थात मैं अपनी आत्मा के वास्तविक रूप में स्थिर हो गया हूँ। हे भिक्षुकगण, अब तुमको अप्रमत्त, समाहित और सुशील होना चाहिए और सुसमाहित संकल्प होकर अपने चित्त का पर्य्यवेक्षण वा अनुरक्षण करना चाहिए। जो भिक्षुक अप्रमत्त होकर इस धर्मविनय में प्रवृत्त होगा, वह जाति और संसार को त्याग कर दुःख का नाश करेगा। *"

वैशाली में इस प्रकार भिक्षुसंघ को उपदेश कर बुद्धदेव वहाँ से भंडग्राम को गए। वहाँ भिक्षुओं के संघ को एकत्र करके उन्होंने कहा—"हे भिक्षुओ! अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम शील, समाधि-प्रज्ञा और विमुक्ति का अनुशीलन करते हुए संसार में विचरो।'

भंडग्राम से बुद्धदेव हस्तिग्राम, आम्रग्राम और जंबूग्राम में ठह-

---

* परिपक्को वयो मह्यं परित्त मम जीवितं ।
पहाय वो गमिस्सामि कतं मे सरणं मनो ॥
अप्पमत्ता सतिमन्तो सुसीला होथ भिक्खवो ।
सुसमाहितसंकप्पो सचित्त मनुरक्खथ ॥
यो इमस्मिं धम्मविनये अप्पमत्तो विहरिस्सति ।
पहाय जाति संसारं दुक्खस्संतं करिस्सति ॥

रते और वहाँ के भिक्षुओं को धर्मोपदेश करते हुए भोगनगर में गए और वहाँ के आनंदचैत्य नामक विहार में ठहरे। वहाँ बुद्धदेव ने भिक्षुओं को एकत्र करके उनसे कहा—"मेरे बाद यदि कोई विद्वान् भिक्षु वा स्थविर तुमको किसी बात का उपदेश करे तो तुम उसे सहसा मानने के लिये उद्यत न हो जाना। तुम उसे मेरे उपदेशों से मिलाना और विचार करना। अनुकूल होने पर उसे ग्रहण करना और प्रतिकूल होने पर उसका तिरस्कार करना।"

भोगनगर से भगवान् बुद्धदेव पावा गए। वहाँ उनके आगमन का समाचार सुन चुंद नामक कर्म्मकार (कमकर) जो पावा का प्रधान था, उनके पास आया और उसने विनीत भाव से दूसरे दिन अपने घर भोजन करने के लिये उन्हें संघ सहित निमंत्रण दिया। भगवान् बुद्ध ने तूष्णी भाव धारण कर चुंद का निमंत्रण स्वीकार किया। दूसरे दिन भगवान् बुद्धदेव ससंघ चुंद के यहाँ भोजन के लिये गए। चुंद ने अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थ तय्यार किए और जब वह परोसने लगा तब बुद्धदेव ने चुंद से कहा—"चुंद, तुम सूअर† का मांस मुझ को ही देना, दूसरे को मत देना।

---

† महापरिनिर्वाण सूत्र में 'सूकर मद्दवं' पद कई स्थलों में आया है, जैसे "अथखो चुंदो कम्मार पुत्तो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा पहुतञ्च सूकरमद्दवं" इत्यादि। बौद्ध भिक्षुगण का कथन है कि 'सूकरमद्दव' एक कंद का नाम है। पर बुद्धघोष ने अर्थकथा में 'सूकर मद्दवन्ति नातितरुणस्स नाति जिण्णस्स एकजेट्ठक सूकरस्स पवत्तं मंसं। तं किरमुदुं चेव सिनिद्धं च होति' लिखा है जिससे निश्चय होता

मनुष्य-लोक, देवलोक और ब्रह्मलोक में बुद्ध को छोड़ दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो उसे पचा सकता हो। मुझे परोसने पर मेरे खाने से जो मांस बच रहे, उसे तुम गड्ढा खोदकर गाड़ देना।" चुंद ने भगवान् बुद्धदेव की बात सुन सूअर का मांस केवल उन्हीं को दिया और संघ के खा चुकने पर अवशिष्ट मांस आँगन में गड्ढा खोदकर गाड़ दिया।

भगवान् बुद्धदेव का शरीर पहले से अस्वस्थ था, सूकरमांस खाने से उन्हें रक्तामाशय अर्थात् आँव और लहू के दस्त का रोग हो गया। उनके पेट में मरोड़ होने लगे और आँवलहू पड़ने लगा। उसी अवस्था में बुद्धदेव पावा से कुशीनार चले गए। मार्ग में उनका शरीर शिथिल हो गया। महात्मा बुद्धदेव ने आनंद से कहा— "आनंद! तुम यहाँ कोई कपड़ा बिछा दो, मैं लेटूँगा। मुझे प्यास लग रही है, तुम दौड़कर पानी लाओ।" आनंद ने उनकी बात सुनकर वहाँ वस्त्र बिछा दिया और वह दौड़ा हुआ पानी के लिये गया और पानी ला कर उसने उन्हें पिलाया। इसी बीच में आराड़-कालाम का एक शिष्य जिसका नाम पुक्कुस था, वहाँ आया और उसने भगवान् को एक सुनहला वस्त्र अर्पण किया। आनंद ने वह वस्त्र भगवान् बुद्ध को ओढ़ा दिया। वहाँ भगवान् बुद्धदेव ने थोड़े काल तक विश्राम किया और जागनें पर कुशीनार चले। वहाँ से

है कि सूकरमद्दव एक वर्षा के सूकर के पवित्र मांस को कहते हैं। इससे अनुमान होता है कि उत्तरापथ के द्विजों में बुद्धदेव के पूर्व से सूकर मांस खाने की परिपाटी थी जो उनके पीछे विलुप्त हो गई।

चलकर वे भिक्षु संघ के साथ कक्कुत्था नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ पर भगवान् बुद्धदेव ने कक्कुत्था नदी के शीतल जल में स्नान किया और थोड़ा सा पानी पिया और उस नदी के किनारे एक आम के बाग में जो चुंद का था, वे ठहरे। चुंद ने, जो उनके साथ साथ पावा से उन्हें पहुँचाने आया था, वहाँ पर एक कपड़ा बिछा दिया। उसी कपड़े पर लेटकर भगवान् बुद्धदेव ने थोड़ी देर तक विश्राम किया और फिर वहाँ से वे संघ समेत कुशीनगर को चल पड़े।

मल्लों की राजधानी कुशीनगर हिरण्यवती नदी के किनारे थी। भगवान् बुद्धदेव हिरण्यवती पार कर नगर के किनारे शाल के एक वन में ठहरे। वहाँ उनका रोग और भी बढ़ गया। उनके हाथ पैर ढीले पड़ गए। संघ के लोग घबरा गए। उसी शाल-वन में द्रोणाचार्य्य के गोत्रज एक ब्राह्मण रहते थे। उन्हीं की कुटी के पास लोगों ने एक खाट लाकर साखू के दो पेड़ों के बीच में बिछा दी। उसी खाट पर भगवान् बुद्धदेव उत्तर की ओर सिर कर के लेट गए। यह तथागत का अंतिम लेटना था। उनकी यह अवस्था देखकर आनंद ने उनसे पूछा—"भगवन्! अब आपकी अंतिम अवस्था है, कृपाकर यह बता दीजिए कि स्त्री-जाति से हम लोग कैसा बर्ताव करें" ?

भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"अदर्शन अर्थात् उनसे न मिला करना।" आनंद ने कहा—"भगवन्! यदि उनका दर्शन हो ही जाय तो क्या करना चाहिए ?"। भगवान् बुद्ध ने कहा—"अनालाप"

अर्थात् उनसे संभाषण न करना।" "आनंद ने कहा-"भगवन्! यदि आलाप करना ही पड़े तो क्या करना उचित है?" तथागत ने कहा-"स्मृत्युपस्थान" अर्थात् अत्यन्त सावधानता से आलाप करना। ऐसा न हो कि उनसे राग हो और तुम्हारे ब्रह्मचर्य्य में बाधा पड़े।"

इस प्रकार वे आनंद से बातें कर रहे थे कि सुभद्र नामक परिव्राजक भगवान् बुद्धदेव के पास कुछ प्रश्न करने के लिये पहुँचा। उस समय भगवान् बुद्धदेव अंतिम व्यथा से क्लांत हो रहे थे। आनंद ने सुभद्र को रोका और कहा-"इस समय भगवान का चित्त अवस्थ है, तुम उन्हें अधिक कष्ट मत दो।" जब आनंद की बात भगवान् बुद्धदेव के कानों में पड़ी तब उन्होंने आँख खोल दीं और आनंद से कहा—"आनंद! सुभद्र को रोको मत, उसे अपना प्रश्न करने दो।" सुभद्र भगवान् बुद्धदेव के पास गया और अभिवादन करके उसने उनसे तीन प्रश्न किए। पहला यह कि-"आकाश में पद अर्थात् रूपादि है वा नहीं; दूसरे आपके शासन के अतिरिक्त अन्य कोई कल्याण मार्ग है वा नहीं;तीसरे, संस्सार शाश्वत है वा नहीं?" सुभद्र के प्रश्नों को सुनकर भगवान् बुद्धदेव ने कहा—

आकासे पदे नत्थि समणो नत्थि वहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा किप्पपंचा तथागता।
संखारो सस्सतो नत्थि नत्थि बुद्धानभिञ्छितं।

अर्थात्—हे सुभद्र! आकाश में पद नहीं है। मेरे शासन से बाह्य कोई शांति वा कल्याण का मार्ग नहीं है। संसार की सब प्रजा प्रपंच में रत है, केवल तथागत पुरुष ही निष्प्रपंच है। सब संस्कार

अशाश्वत् नाशमान् हैं । बुद्ध वा ज्ञानी पुरुषों को किसी बात की इच्छा नहीं होती ।"

इस प्रकार संसार का महान् शिक्षक इक्यासी वर्ष इस संसार में रहकर अपनी अंतिम अवस्था में * अपने अंतिम शिष्य को अपने अंतिम दिन के अंतिम पहर में अंतिम धर्म का उपदेश करता हुआ अचल समाधि में जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता, अपने अचल स्वरूप में स्थित हुआ । उसका अंतिम वाक्य यह था—

"संयोगा विप्रयोगान्तः"

"संयोग का वियोग ध्रुव है ।" महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर भिक्षु संघ की सम्मति से आनंद कुशीनगर में गया और उसने मल्लराज को भगवान् के परिनिर्वाण का समाचार सुनाया । मल्लराज अन्य मल्लवंशी क्षत्रियों समेत बड़े समारोह से महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण स्थान पर आए और गंध आदि से उनके शरीर को अलंकृत कर कपड़े में लपेटकर तेल की नाव में उसे रख दिया । चारों ओर भिक्षुसंघ को महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण की सूचना दी गई । सातवें दिन उनकी अंत्येष्टि क्रिया के लिये चंदन आदि सुगंधित काष्ठों की चिता बनाई गई और भगवान् बुद्धदेव का शव नाव से निकालकर सुगंधित द्रव्यों के साथ चिता पर रखा गया । सब लोग उसके चारों ओर विनीत भाव से खड़े हुए और चिता में आग देना ही चाहते थे कि महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं को साथ लिए उस स्थान पर पहुँचा । महाकाश्यप ने तीन बार चिता की प्रदक्षिणा की और महात्मा बुद्धदेव की पाद-वंदना

करके वह खड़ा हो गया। चिता में आग लगा दी गई और बात की बात में महात्मा बुद्धदेव का शरीर जलकर राख का ढेर हो गया।

दूसरे दिन उनकी अस्थिचयन-क्रिया की गई और हड्डियाँ चुन कर एक कुंभ में रखी गईं। मल्लराज ने उनकी चिता के स्थान पर स्तूप बनाने का प्रबंध किया। इसी बीच में मगध के महाराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छिवी लोगों, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्लकल्प के वूलय लोगों, रामग्राम के कोलियों और पावा के मल्लराज ने महात्मा बुद्धदेव का परिनिर्वाण सुन अपने अपने दूतों को उनकी अस्थि के भाग के लिये कुशीनगर के मल्लराज के पास भेजा और लिखा कि "भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। इस नाते उनके शरीर के अंश पर हमारा भी स्वत्व है।" इसी बीच में वेठद्वीप के ब्राह्मणों ने भगवान् बुद्धदेव के शरीरांश के लिये कुशीनगर के महाराज को लिखा। कुशीनगर के मल्लराज ने जब देखा कि सभी लोग भगवान् की अस्थि का अवशिष्ट भाग माँग रहे हैं, तब उन्होंने कहा—"जो कुछ हो, भगवान् बुद्धदेव ने हमारे गाँव की सीमा में परिनिर्वाण प्राप्त किया है। हम उनके शरीर के भस्म का अंश किसी को न देंगे।"

जब महाराज कुशीनगर की यह बात अन्य मागध और वैशाली आदि के राजाओं ने सुनी तब सब लोग अपना अपना भाग लेने के लिये सेना लेकर कुशीनगर पर चढ़ धाए और घोर संग्राम की संभावना संघटित हुई। महात्मा द्रोणाचार्य ने जब देखा कि

बात की बात में घोर जनक्षय हुआ चाहता है, तब वे सब लोगों के बीच में खड़े होकर उच्च स्वर से सब को संबोधन करके बोले—

> सुणंतु भोन्तो मम एक वाक्यं
> अम्हाकं बुद्धो अहु खन्तिवादी
> नहि सधऽयं उतम पुग्गलस्स
> सरीरंभगे सिया संपहारो।
> सब्बेव भोन्तो सहिता समग्गा
> सम्मोदमाना करोमट्ठभागे।
> वित्थारिका होन्ति दिसासु थूपा
> बहुज्जना चक्खुमंतो पसन्ना। इति।

क्षत्रिय वर्ग! आप लोग मेरी बात सुनिए। हमारे महात्मा बुद्ध क्षांतिवादी थे। यह उचित नहीं है कि ऐसे महापुरुष की मृत्यु पर आप लोग घोर संग्राम मचावें। आप लोग सावधान हो शांति धारण करें। मैं उनकी अस्थियों के अवशेष के आठ भाग किए देता हूँ। यह अच्छी बात है कि सब दिशाओं में उनकी धातु पर स्तूप बनवाए जायँ और सब लोग जिन्हें आँख है, उसे देखकर प्रसन्न हों।

द्रोणाचार्य्य की यह बात नकर सब लोग शांत हो गए। द्रोण ने भगवान् बुद्धदेव के धातु के आठ भाग करके एक एक भाग कुशीनगर, पावा, वैशाली, कपिलवस्तु, रामग्राम, अल्लकल्प, राजगृह के क्षत्रियों और वेठद्वीप के ब्राह्मणों को दे दिया। इसके बाद पिप्पलीय बन के मोरिय क्षत्रियों का दूत अपने भाग के लिये पहुँचा।

अस्थियों का भाग हो चुका था। निदान द्रोण ने उन्हें भगवान् की चिता का अंगारा दे कर विदा किया। अंत को द्रोण ने वह कुंभ जिसमें भगवान् बुद्धदेव की अस्थि विभाग के पूर्व रखी थी, सब लोगों से माँग लिया और उस पर स्वयं स्तूप बनवाया।

द्रोण के इस प्रकार सब को शांत कर देने पर सब भिक्षुओं ने एक स्वर से इस गाथा का गान किया—

देविन्द नागिन्द नरिन्द पूजितो
मनुस्सिन्द सेट्ठहि तथेव पूजितो।
तं वन्दथ पञ्जालिका भवित्वा,
बुद्धो ह वे कप्पसतेहि दुल्लभो।

---

(३७) बौद्ध धर्म

महात्मा बुद्धदेव के परिनिर्वाण के बाद ५०० भिक्षु राजगृह का सप्तपर्णी गुहा में उनके उपदेशों का संग्रह करने के निमित्त एकत्र हुए और उनके उपदेशों को तीन बड़े बड़े संग्रहों में उन्होंने संगृहीत किया। इस संग्रह में कितने भाग थे और यह कितना बड़ा था, इसका ठीक पता चलना बहुत कठिन है। पर फिर भी यह अनुमान होता है कि यह संग्रह वर्तमान हीनयान और महायान के त्रिपिटक की अपेक्षा अवश्य छोटा रहा होगा। इन दोनों त्रिपिटकों में पठित कतिपय गाथाओं के मिलान से यह अनुमान होता है कि वे एक दूसरे की छाया नहीं हैं, किन्तु वे एक तीसरे की छाया हैं जो दोनों से प्राचीनतर थी।

कितने विद्वानों का अनुमान है कि त्रिपिटक में सूत्रपिटक* प्राचीनतम है और उनका ऐसा अनुमान कई कारणों से युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है। यदि थोड़े काल के लिये हम उनकी यह बात न मानकर यही मानें कि उनके शिष्यों ने सूत्रपिटक के अतिरिक्त अभिधर्म और विनयपिटक का भी संग्रह प्रथम धर्म-संघ में किया, तो भी हमें यह मानना पड़ेगा कि आदिम त्रिपिटक के जितने अंश सूत्रपिटक में हैं, अभिधर्म और विनय में उतने नहीं हैं; अथवा वह

---

* इसमें बुद्धदेव के उपदेशों का घटनासहित वर्णन है।

अभिधर्म * और विनयपिटक † वर्तमान अभिधर्म और विनयपिटक का मूल था जिसकी टीका वा भाष्य-रूप यह वर्त्तमान त्रिपिटक है।

उस आदिम त्रिपिटक का कई वार संस्करण हुआ। हीनयान‡ का त्रिपिटक आदि त्रिपिटक का तृतीय संस्करण है। यह संग्रह महाराज अशोक के समय में किया गया था और उसमें भी जातक आदि के अंश अशोक से भी पीछे के बने हुए हैं। महायान का त्रिपिटक चतुर्थ धर्मसंघ का संस्करण है जो महाराज कनिष्क के समय में संघटित हुआ था, और जिसमें बौद्ध धर्म के साथ तांत्रिक अंशों का मिश्रण पाया जाता है। माध्यमिक, सौत्रांतिक, योगाचार और वैभाषिक इस महायान के दर्शन हैं जिनका विकाश महाराज अशोक के बहुत पीछे हुआ।

महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन आर्य्यधर्म के अतिरिक्त, जिसका उपदेश उपनिषद् आदि ग्रंथों में मिलता है, किसी नवीन या अनोखे धर्म का उपदेश नहीं किया। उन्होंने अपने मुँह से अपने उपदेशों में स्पष्ट शब्दों में कई वार कहा है 'एषधम्मो सनत्तनो' अर्थात् यह सनातन धर्म है।

महात्मा बुद्धदेव का उपदेश दो भागों में विभक्त किया जा सकता

---

* अभिधर्म में चित्त, चैतसिक, रूप और निर्वाण, अर्थात् मन, उसकी वृत्तियों और निर्वाण का वर्णन है।

† इसमें आचार व्यवहार का वर्णन है।

‡ आजकल बौद्ध धर्म के दो मुख्य भेद मिलते हैं—हीन यान और महा-याना। पर इनके अट्ठारह निकायों का उल्लेख मिलता है और प्रत्येक निकाय के

है, उपासक-धर्म और श्रमण-धर्म। इसी को संस्कृत भाषा में प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग तथा वैदिक भाषा में पितृयान और देवयान कहते हैं।

(क) उपासक धर्म

उपासकों और साधारण गृहस्थों के लिये भगवान् बुद्धदेव का यही उपदेश था कि मनुष्य एक जाति है। उसमें वर्णभेद प्राकृतिक नहीं है किंतु व्यावहारिक है। वर्णभेद को लेकर लोग दूसरे मनुष्यों को जो नीच समझते हैं, यह उनकी मूर्खता है। पुरुष अपने कर्म से श्रेष्ठ और अधम होता है। किसी वर्ण में उत्पन्न होने मात्र से कोई पुरुष श्रेष्ठ वा अधम नहीं हो सकता। भगवान् बुद्धदेव का मुख्य उपदेश यही था कि *व्यावहारिक वर्णभेद का मुख्य हेतु कर्म-भेद है।* वासेट्ठसुत्त में उन्होंने स्पष्ट कहा है—

न केसेहि न सीसेन न कण्णेहि न अक्खिहि।
न मुखेहि न नासाय न ओट्ठेहि भमूहि वा॥
... ...
लिंग जातिमयं नेव तथा अञ्ञासु जातिसु॥

अर्थात् मनुष्य के बाल, सिर, कान, आँख, मुँह, नाक, होंठ, भौंह इत्यादि में कोई ऐसा अंतर नहीं जिसे हम जातिभेद का चिह्न कह सकें और जिससे यह पता चला सकें कि अमुक पुरुष अमुक जाति का और अमुक अमुक जाति का है।

योहि कोचि मनुस्सेसु गोरक्खं उपजीवति

---

१ त्रिपिटक के पाठ और क्रम भिन्न भिन्न थे। उनके मूल ग्रन्थों का लोप हो गया है।

एवं वासेट्ठ जानाहि कस्सको सो न ब्राह्मणो।
योहि कोचि मनुस्सेसु प्रथु सिप्पेन जीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि सिप्पिको सो न ब्राह्मणो।
योहि कोचि मनुस्सेसु वोहारं उपजीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि वाणिजो सो न ब्राह्मणो।
यो कोचि मनुस्सेसु परपेस्सेन जीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि पेस्सिको सो न ब्राह्मणो।
योहि कोचि मनुस्सेसु अदिन्नं उपजीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि चोरो एसो न ब्राह्मणो।
योहि कोचि मनुस्सेसु इस्सुत्थं उपजीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि योधाजीवी न ब्राह्मणो।
योहि कोचि मनुस्सेसु पोरोहिच्चेन जीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि याजको सो न ब्राह्मणो।
योहि कोचि मनुस्सेसु गामं रट्ठं च जीवति
एवं वासेट्ठ जानाहि राजा एसो न ब्राह्मणो।
न वाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं
भोवादि नाम सो होति स वे होति सकिंचनो
आकिंचनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणो।

हे वाशेष्ठ! जो पुरुष गोरक्षा से जीवन निर्वाह करता है वह कृषक है, ब्राह्मण नहीं है। इसी प्रकार शिल्प का काम करनेवाला शिल्पी, व्यवहार या लेन करनेवाला वणिक वा वैश्य, चोरी करने-वाला चोर, शस्त्रोपजीवी योद्धा, पुरोहिती करनेवाला याजक और

गाँव और राष्ट्र का मालिक राजा है, ब्राह्मण नहीं। मैं ब्राह्मण माता पिता से उत्पन्न होने से किसी को ब्राह्मण नहीं मानता। वह भावादि या नाम मात्र का ब्राह्मण है। वही व्यावहारिक ब्राह्मण है। मैं पारमार्थिक विषय-वासना रहित पुरुष को ब्राह्मण कहता हूँ। इससे स्पष्ट है कि महात्मा बुद्धदेव के ब्राह्मण शब्द से केवल परिव्राजक सच्चा संन्यासी ही अभिप्रेत था। इसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा भी है—

> यो ध तण्हं परित्वान अनागारो परिव्वजे।
> तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो तृष्णा का नाश कर गृहस्थाश्रम त्याग कर संन्यास ग्रहण करता है, जिसने तृष्णा और भव (सांसारिक व्यवहार) का सर्वथा क्षय कर दिया है वा उन्हें त्याग दिया है, मैं उसी को ब्राह्मण* कहता हूँ।

व्यावहारिक धर्म में भगवान् बुद्धदेव ने गृहस्थ के लिये माता पिता की शुश्रूषा, भाई बंधु कुटुंब का पोषण, आनिहित कर्म का करना इत्यादि कर्त्तव्य बतलाया है—

---

* पाली भाषा का 'समण' शब्द संस्कृत 'शर्मण' शब्द का ही अपभ्रष्ट रूप प्रतीत होता है। भ्रमवश पीछे के विद्वानों ने समण शब्द की मुख्य प्रकृति को न जानकर समण से संस्कृत 'श्रमण' शब्द बना लिया है। इसी प्रकार सावक संस्कृत श्रावक का अपभ्रष्ट है जिसको पीछे से 'श्रावक' संस्कृत रूप दिया गया।

माता पितु उपट्ठानं पुत्तदारस्स संगहो।
अनाकुला च कम्मन्ता एतं मंगलमुत्तमं॥
दानं च धम्मचरिया च ञातिकानं च संगहो।
अनवज्जानि कम्मनि एतं मंगलमुत्तमं।

महामंगलसुत्त।

धम्मेन माता पितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं यो वणिज्जं।
एतं गही वत्तयं अप्पमतो सयं पभे नाम उपति लोकं।

धम्मिक सुत्त।

माता पिता का उपस्थान करना, पुत्र और कलत्र का संग्रह करना और कर्म्म करने से व्याकुल न होना, ये सब उत्तम कल्याण-कारक कर्म हैं। दान देना, धर्माचरण, जातिवालों का संग्रह और भरण-पोषण, अनिंदित कर्मों का करना ये सब श्रेष्ठ मंगलकारक कर्म हैं। धर्मपूर्वक कर्म से माता और पिता का पालन पोषण करो, धर्मपूर्वक व्यवहार, वाणिज्य और व्यापारादि करो। गृहस्थ पुरुषों को इस प्रकार आलस्य और प्रमाद त्यागकर अपना धर्म्म पालन करना चाहिए। ऐसा करने से वे स्वयंप्रभ नामक लोक को प्राप्त होते हैं।

इतना ही नहीं, भगवान् बुद्धदेव ने यद्यपि हिंसायुक्त यज्ञों की निंदा की है और ऐसे यज्ञों के याजकों को बुरा कहा है, पर फिर भी अग्निहोत्र और सवित्री की, जो पंच महायज्ञों में आदि और मुख्य कर्म हैं, प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है—

अग्गिहुतमुखा यञ्ञा सवित्ती छन्दसानं मुखं।

राजामुखं मनुस्सानं नदीनं सागरो मुखं ॥
नक्खत्तानं मुखं चन्दो आदिच्चो तपतं मुखं ।
पुञ्ञं आकंखमानानं, संघो वे यजनं मुखं ॥

यज्ञों में अग्निहोत्र श्रेष्ठ है, छंदों में सावित्री श्रेष्ठ है, मनुष्यों में राजा प्रधान है, नदी आदि जलाशयों में समुद्र सब से महान् है, नक्षत्रों में चंद्रमा सब से प्रकाशित और तपनेवालों में सूर्य्य महान् है, सब इच्छित कर्मों में पुण्य श्रेष्ठ है और यजन में श्रेष्ठ संघ वा ब्रह्मज्ञानी पुरुषों का सत्संग है।

महात्मा बुद्धदेव ने कोकालीय सुत्त में कुंभीपाक, असिपत्रवन, वैतरणी आदि नरकों का उसी प्रकार वर्णन किया है जिस प्रकार उनका वर्णन पुराणादि में मिलता है। यथा एक बार महाराज बिंबसार को उन्होंने श्राद्ध करने का उपदेश दिया था, जिसमें उन्होंने ब्राह्मण और श्रमण-भोजन के फल का दान उन मृत बंधुओं की आत्मा का जिनके उद्देश से श्राद्ध किया गया था, आह्वान करा के दिलाया था *।

भगवान् बुद्धदेव ने गृहस्थों को दश-लक्षणात्मक धर्म का उसी

---

* उत्सर्ग का मन्त्र जिसका अब तक बौद्धों में प्रचार है, यह है:-भन्तेमयं कम्मं च कम्मफलंचपेतं कालंकतं उद्दिस्स इमंयजं वा इमं पिंडपात खादनीयं भोजनीयं वा तिन्नं रतनानं सद्धाधिसेनदक्खिणोदकं पातेत्वा देमि इमेनपुञ्ञ कम्मेनकालंकतो मनुस्स देवसम्पत्तिंलभित्वा पच्छिमेभवेखेमं निब्बानं भापुनातु अम्हाकं चेदपुञ्ञं निब्बानस्स पच्चयो होतुनोइदं पुञ्ञभागं पेतमादिं कत्वा सब्बेसत्तानं भाजेमसब्बेसत्ताइद पुञ्ञभागं अन्हेति समंलभेन्तु ।

प्रकार उपदेश किया है जैसे उनका वर्णन हिंदुओं के धर्मशास्त्रों में मिलता है। उनका विशेष लक्ष्य शील, प्रियभाषण, अहिंसा तथा अप्रमाद पर था। सत्य और सदाचार आदि का उपदेश तो उनके वाक्यों में पद पद पर पाया जाता है। जैसे—

वाहुसच्चं च सिप्पं च विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा एतं मंगलमुत्तमं॥
अरतिं विरतिं पापा मज्जपाना च सञ्ञमं।
अप्पमादो च धम्मेसु एतं मंगलमुत्तमं।
गारवो च निवातो च संतुट्ठि च कतञ्ञता।
कालेन धम्मसवणं एतं मंगलमुत्तमं॥
खन्ती च सोवचस्सता, समणानं च दस्सनं।
कालेन धम्मसाकच्छा एतं मंगलमुत्तमं॥
तपोच ब्रह्मचरिया च अरियसच्चा न दस्सनं।
निब्बाण सच्छिकिरिया च एतं मंगलमुत्तमं॥

बाहु सत्य, शिल्प, विनय, सुशिक्षित होना और प्रिय वचन ये उत्तम मंगल हैं। पाप से अरिति और विरति, मद्यपान से संयम (बचना) और धर्माचरण में अप्रमाद ये उत्तम मंगल हैं। गुरुत और अनिर्वात (अविकम्प वा धृति) संतोष, कृतज्ञता और काल आने पर धर्म का श्रवण करना, ये उत्तम मंगल हैं। क्षांति, सौवचस्व, साधुओं का दर्शन और समय पर धर्म को साक्षात् करना, ये उत्तम मंगल कार्य हैं। तप, ब्रह्मचर्य्य, आर्य्य सत्यों का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार ये उत्तम मंगल हैं।

भगवान् बुद्धदेव ने जो सुभाषित ऊपर कहा है, उसके चार भेदों का वर्णन 'सुभासित सुत्त' में इस प्रकार किया है—

सुभासितं उत्तम माहु संतो।
धम्मं भणेनाधम्मं तं दुतीयं।
पियं भणेनाप्पियं तं ततीयं।
सच्चं भणेनालीकं तं चतुत्थं।
तमेव भासं भासेय्य ययत्तानं न तापये।
परे च न विहिंसेय्य सा वे वाचा सुभासिता॥
पियवाचमेव भासेय्य या वाचा पतिनन्दिता।
यं आनादाय पापानि परेसं भासते पियं॥
सच्चं मे अमता वाचा एस धम्मो सनत्तनो।
सच्चे अत्थे च धम्मे च आहु सन्तो पतिट्ठितो॥

शांत और सुभाषित वाक्य को उत्तम कहते हैं, धर्म की बात कहना अधर्म की नहीं कहना यह दूसरा सुभाषण है। प्रिय बोलना, अप्रिय नहीं बोलना यह तीसरा सुभाषण है। सत्य बोलना असत्य नहीं बोलना यह चौथा सुभाषण है। वही बात बोलनी चाहिए जो अपनी आत्मा के विरुद्ध न हो और जिससे किसी को दुःख न पहुँचे, वही सुभाषित वाक्य है। वही प्रिय वाक्य बोलना चाहिए जो आनंददायक हो और ऐसा न हो कि दूसरे के लिये प्रिय बोलने से पाप लगे। मेरी वाणी सदा सत्य हो, यह सनातन धर्म है। सत्य, अर्थ और धर्म शांति प्रतिष्ठित हैं।

असत्य बोलने के लिये भगवान् बुद्धदेव ने यहाँ तक निषेध

किया है कि किसी अवस्था में भी असत्य न बोलना चाहिए। वे कहते हैं—

सभंगतो वा परिसग्गतो वा
एकस्स चेको न मुसा भणेय्य।
नभाणये भणनं नानुजञ्जा।
सब्बं अभूतं परिवज्जयेय्य॥

सभा में जाकर, चाहे परिषद् में जाकर अथवा परस्पर मिथ्या न बोलना चाहिए, न बोलने देना चाहिए और न बोलने की आज्ञा देनी चाहिए। सब असत्य वाक्यों को बोलने के पहले ही परिवर्ज करना चाहिए।

भगवान् बुद्धदेव ने ऐसे लोगों का सबसे अधिक तिरस्कार किया है जिन्हें महाराज मनु ने धर्म-ध्वजी कहा है। वे वसल-सुत्त में कहते हैं—

यो च अनरहा संतो अरहं पटिजानती।
चोरो स ब्रह्मकेलोके एस खो वसलाधमो॥

जो अनर्ह, अयोग्य होकर अपने को योग्य समझता है, वह ब्रह्मलोक में चोर है और ऐसे पुरुष को वृषलाधम कहते हैं।

गृहस्थों के लिये उनका सबसे उत्तम उपदेश दुष्टों के संग का परित्याग करना है। वे कहते हैं—

असेवनं च वालानं पंडितानं च सेवनं।
पूजा च पूजनीयानं एतं मंगलमुत्तमं॥
तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथ

मेधाविनं चेव बहुस्सुतं च
आन्नाय अत्थं पटिपज्जमानो
विञ्ञातधम्मो सो सुखलभेय ॥

मूर्खों का साथ न करना और पंडितों का संग करना तथा पूजनीय पुरुषों की पूजा प्रतिष्ठा करना यह उत्तम और मंगल-कारक कर्म है। इसलिये ऐसे सत्पुरुषों का जो मेधावी और बहु-श्रुत हों, संग करो, क्योंकि अर्थ को न जानकर जो उनकी शरण का प्राप्त होता है वह विज्ञात-धर्म होने पर सुख प्राप्त करता है।

अतिथि-पूजन पर उनका कथन था कि न केवल वही पुरुष नीच और पापी है जो आए हुए अतिथि का पूजन नहीं करता, किंतु ऐसे लोग भी निंद्य हैं जो किसी के घर जाकर उनका आतिथ्य-सत्कार स्वीकार नहीं करते ! वे कहते हैं—

यो वै परकुले गन्त्वा भुत्वा न सुचिभोजनं ।
आगतं न पटिपूजेत तं जञ्ञा वसलोइति ।

जो पराए घर पर जाकर पवित्र भोजन नहीं करता और आए हुए अतिथि का सेवा-सत्कार नहीं करता, वह वृषल है।

इन उपर्युक्त थोड़े से वाक्यों से यह स्पष्ट है कि महात्मा बुद्धदेव ने गृहस्थों के लिये किसी नए धर्म का उपदेश नहीं किया, किंतु उसी प्राचीन आर्य्य धर्म का उपदेश किया था जिसका उपदेश उनके पूर्व महर्षिगणों ने श्रुति स्मृति में किया था। वे एक धर्म-संशोधक थे और प्रचलित प्रथा में जो कृत्य उन्हें समाज के लिये हानिकारक प्रतीत हुए, उनका उन्होंने स्पष्ट शब्दों में निर्भयता से प्रतिवाद किया।

(ख) श्रमण धर्म

महात्मा बुद्धदेव का मुख्य लक्ष संन्यासाश्रम की अवस्था का सुधार करना था। संन्यास-ग्रहण की प्रथा इस देश में उपनिषद्-काल से चली आती थी और लोग यथारुचि वैराग्य प्राप्त होने पर ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थाश्रम वा वानप्रस्थाश्रम से संन्यास में प्रविष्ट हुआ करते थे। यद्यपि शास्त्रों में केवल अधिकारी पुरुष ही को संन्या-साश्रम के ग्रहण का अधिकार दिया गया है, पर फिर भी कितने आलसी और काम-चोर लोग संन्यासाश्रम में प्रवेश करने लग गए थे जिसका परिणाम यह हुआ था कि उन लोगों के दुराचारों से संन्यास आश्रम ही कलंकित हो गया था। इन अनधिकारियों को संन्यास धर्म में प्रवेश करने से स्वयं भगवान् बुद्धदेव भी न रोक सके थे और देवदत्त आदि कितने ही अनधिकारी पुरुष काषाय वस्त्र धारण कर भिक्षु बन गए थे जिसके कारण स्वयं भगवान् बुद्ध-देव को भी अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

किसी आश्रम के आचार का पालन तब तक ठीक रूप से नहीं हो सकता जब तक उसके प्रत्येक व्यक्ति पर उस आश्रम के समुदाय का जिसे समाज कहते हैं, पूरा दबाव न हो। संसार का कोई व्यक्ति यदि वह बिलकुल स्वतंत्र हो, केवल ईश्वर वा परलोक वा स्वर्ग नरक के भय से धर्म का अनुष्ठान नहीं कर सकता जब तक उस पर समाज वा पंच का दबाव वा भय न हो। समाज का दंड-विधान

ही एक ऐसी वस्तु है जो उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को किसी सूत्र में बाँध सकती है। गृहस्थाश्रम में समाज-बंधन को ऋषियों ने सहस्रों वर्ष से दृढ़ कर रखा और अच्छी तरह से चारों ओर से जकड़बंद कर दिया था। जब लोग उच्छृंखल होकर अनेक विकार उत्पन्न कर बैठते हैं तब संन्यासाश्रम के लोगों को जो सर्वथा परिग्रह रहित और स्वतंत्र हैं, एक सूत्र में बाँधने के लिये कौन ऐसी शक्ति है जो बाध्य कर सकती है? इसमें कोई सन्देह नहीं कि महात्मा बुद्धदेव के पूर्व के महर्षियों और आचार्य्यों ने संन्यास धर्म के कृत्यों और कर्मों का निर्वाचन उपनिषदादि ग्रंथों में कर दिया था, पर साथ ही उन्हें सर्वथा अदंड्य और राजपरिषद् की आज्ञा से विनिर्मुक्त कहकर किसी ऐसी शक्ति का निर्वाचन नहीं किया था जो उनको बलात् उस नियम पर चलने के लिये बाध्य करती। महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन महर्षियों की आज्ञा में इस त्रुटि का अच्छी तरह अनुभवपूर्वक साक्षात् किया था। वे स्वयं राजकुमार थे। उन्हें शासनपद्धति और परिषद् संघटन आदि का अच्छा परिचय था। संन्यासियों की अवस्था के सुधार और संन्यासाश्रम के नियम ठीक रीति से चलाने के लिये उन्होंने संघ का संघटन किया। इस सघ में सारी क्रिया परिषद् की रीति पर होती थी। संघ के लिये विनय के नियम निर्धारण करना और प्रायश्चित्त विधान आदि करना इसका मुख्य काम था। इस संघ ने सारे बौद्ध भिक्षुओं को एक दृढ़ सूत्र में बाँध दिया और जिस प्रकार गृहस्थों पर समाज का दबाव था, उसी प्रकार उन्होंने संन्यासियों को भी संघ के दबाव में

डाला और एक निर्धारित नियम से चलने के लिये वाध्य किया। यद्यपि स्वयं भगवान् बुद्धदेव उस संघ के एक साधारण भिक्षु थे, तथापि संघ ने उन्हें आजीवन अपना प्रधान नेता और सर्वस्व बना रखा था। इतना ही नहीं, उन्होंने उन्हें उनके पीछे धर्म और संघ के साथ मिलाकर 'रत्नत्रय' में एक रत्न बना दिया और आज तक सारे संसार के बौद्ध 'बुद्ध, धर्म और संघ' की शरण को प्राप्त होना ही अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

इस संघ ने भिक्षुओं के लिये क्या क्या कर्त्तव्य धर्म ठहराया था, इसका वर्णन विनय-पिटक में सविस्तर है। उन कृत्यों में बुद्ध, धर्म और संघ का तीन बार आश्रय लेना, दसशील,* और चीवर, पिंड, शयनासन और भैपज्य का प्रत्यवेक्षण मुख्य कृत्य है जो नाग वा प्रव्रज्या ग्रहण करनेवाले पुरुष को उपसंपदा ग्रहण के पूर्व करना पड़ता है। संपदा ग्रहण करने पर भिक्षुओं के लिये प्रति पंद्रहवें दिन पूर्णिमा और अमावस्या को उपवसथ और पाप-देशना करना आवश्यक है। उपवसथ के लिये धार्म्मिक सूत्र में लिखा है—

* महावस्तु के मत से प्राणातिपात, अदत्तदान, कामेषुमिथ्याचार सुरामैरेयमद्यपान, मृषावाद, पिशुनवाक्, संभिन्नप्रलाप, अभिध्या, व्यापाद और मिथ्यादृष्टि से निवृत्ति ये दस शील हैं। पर विनयपिटक में हिंसा, स्तेय, व्यभिचार, मिथ्याभाषण, प्रमाद, अपराह्न भोजन, नृत्य-गीतादि, माला-गंधादि, उच्चासन शय्या और द्रव्य संग्रह के त्याग को दस शील माना है।

ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथं ।
चातुदसिं पंचदसिं च अट्ठमिं ॥
पटिहारिय पक्खं च पसन्नमानसो ।
अट्ठंगुपेतं सुसमत्थरूपं ।

प्रति पक्ष में गृहस्थ और परिव्राजक दोनों को अष्टांग* धर्मयुक्त रहकर चतुर्दशी, पंचदशी (अमावस्या और पूर्णिमा) और अष्टमी और प्रतिहार्य्य पक्ष के दिनों में प्रसन्न चित्त होकर उपवास व्रत करना चाहिए ।

संन्यास का अधिकार महात्मा बुद्धदेव के विचार से उसी पुरुष को है जिसे सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो गया हो । वे कहते हैं—

रागं विनयेथ मानुसेसु
दिब्बेसु कामेसु वापि भिक्खु ।
अतिक्कम्मभवं समेच्चधम्मं

---

* पाणं न हाने न चादिन्न मादियं
मुसा न भासे न च मज्जपासिया ।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना
रत्तिं न भुंजेय्य विकाल भोजनं ॥
मालं न धारे न च गंधमाचरे
मंचं छमायं वसयेथ सन्थते ।
एतंहि अठङ्गिदमाहु पोसथं
बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं ॥

सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥
वचसा मनसा च कम्मना च
अविरुद्धा सम्मा विदित्वा धम्मं ।
निब्बाण पदाभिपत्थयातो
सम्मासो लोके परिब्बजेय्य ॥
लोभं च भयं च विप्पहाय
विरतो छेदन-बंधनातो भिक्खु
यो तिण्ण कथंकथा विसल्लो
सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥

जो मानुष्य और दिव्य रोगों को त्यागकर संसार को अतिक्रमण कर धर्मों का संग्रह करके भैक्ष्य-चर्य्या करनेवाला है, वही सब लोकों में परिव्रज्या वा संन्यास ले सकता है। जिसके मन, वचन और कर्म अविरुद्ध हैं, जो सब धर्मों को जान गया है, जो निर्वाण के मार्ग का अनुगामी है, वही संन्यास का अधिकारी है। जिसने लोभ और भय को त्याग दिया है, जो भिक्षु छेदन और बन्धन से विरत है, जो कथंकथा को पार कर गया है, जो वेदना-रहित है, वही संन्यास का अधिकारी है। ऐसे ही अधिकारी पुरुष को भगवान् बुद्धदेव वेदज्ञ मानते थे। उनका कथन है—

वेदानि विचेय्य केवलानि
समणानं यानि ब्राह्मणानं
सब्बा वेदनासु वीतरागो
सब्ब वेदमतिच्च वेदगू सो ॥

जिसने सब वेदों और कैवल्य वा मोक्ष्य-विधायक उपनिषदों का अवगाहन कर लिया है और जो सब वेदनाओं से वीतराग हो कर सब को अनित्य जानता है, वही वेदज्ञ है।

महात्मा बुद्धदेव जगत् को अकर्तृक और जीवात्मा को निर्वाण होने पर नाशमान मानते थे। एक जगह उन्होंने सृष्टि के विषय में कहा है—

नहि अत्थ देवो ब्रह्मा वा संसारस्सत्थि कारणं।
सुद्ध धम्मा पवत्तन्ते हेतु सम्भारपच्चया।

इस संसार की उत्पत्ति का कोई देवता वा ब्रह्मा कारण नहीं है। संसार में सब कुछ कारण और कार्य्य के नियम से उत्पन्न होता है।

जीव वा प्रत्येक चेतनता के विषय में उन्होंने कहा है—

यस्समग्गं न जानासि आगतस्स गतस्स वा।
उभो अंते असम्पस्सं तिरत्थं परिदेवसी।

जिसके आने और जाने के मार्ग को तुम नहीं जानते हो और जिसके दोनों अंत अदृश्य हैं, उसके लिये क्यों दुःख उठाते हो।
गीता में भगवान् कृष्णचंद्र ने भी यही कहा है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिवेदना॥

संन्यासियों के लिये भगवान् बुद्धदेव का प्रधान उपदेश यह था कि वे संग वा कामना का त्याग करें। वे कहते हैं—

सोत्तेसुगत्तोऽविदितिन्द्रिया चरे

धम्मे ठितो अज्जवमद्दवे रतो।
संगातिगो सब्बदुक्खप्पहीनो
न लिप्पते दिट्ठिसुतेसु धीरो॥
अचीयथा वातवेगेन खित्तो
अत्थं पलेति न उपेति संखं
एवं मुनी नामकायाविमुत्तो
अत्थं पलेति न उपेति संखं॥

जो संसार में सुरक्षित, इंद्रियों की वासना से विमुक्त होकर धर्म में स्थित, अर्जव और मार्दव में निरत हो संग त्यागकर विचरता है, वह सब दुःखों से विनिर्मुक्त होकर दृष्टि और श्रुत के विषयों में लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार दीपशिखा वात से बुझकर अपने कारण से लय हो जाती है और फिर संख्या वा भेद को नहीं प्राप्त होती, उसी प्रकार मुनि नाम और काय वा रूप से मुक्त होकर अपने कारण सर्वोत्तम ब्रह्म में लय हो जाता है और संख्या को नहीं प्राप्त होता।

मनोरंजन पुस्तकमाला.

अब तक निम्न लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्शजीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(५) आदर्श हिंदू २ भाग— "   "
(६) आदर्श हिंदू ३ भाग— "   "
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्मपितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकी राम दूबे बी. ए.।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस सी., एल. टी.।
(११) लाल चीन—लेखक बृजनंदन सहाय।
(१२) कबीर वचनावली—संग्रहकर्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी. ए.।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और
शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए.।

(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ-लेखक चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा।

(३८) निबंधमाला पहला भाग—संग्रहकर्ता श्यामसुन्दरदास बी.ए.।

(३९) „ दूसरा भाग— „ „ „।

(४०) सुरसुधा—संग्रहकर्ता श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।

(४१) कर्त्तव्य —लेखक—रामचंद्र वर्मा